# खंड –(ख)

# आलोचना

# 1. कबीर का स्त्री विषयक चिन्तन

हिन्दी साहित्य का सन्त काव्य रचनाधर्मिता, सामाजिक, सांस्कृतिक चेतना, मूल्य चेतना और भावात्मक सौन्दर्य की अभिव्यक्ति की दृष्टि से बेजोड़ है। इन सन्तों ने एक सामाजिक व्यक्ति की हैसियत से समकालीन विविध व्यवस्थाओं की विसंगतियों, अलगावों, असमानताओं, विरोधाभासों एवम् द्वन्द्वों को नजदीक से देखा ही नहीं, भोगा भी है। इस भोग हुए यथार्थ का एहसास करने और कराने वाले रचनाकारों में कबीर अग्रगण्य हैं।

कबीर की कविता मानव समाज और जीवन से जुड़ी हुई कविता है। उनके समय में धर्म, दर्शन, कला साहित्य, संस्कृति, राजनीति यहाँ  तक कि मानव का सामन्तीकरण हो गया था। वे इस सारी सामन्ती व्यवस्था से मुक्ति चाहते थे। इसलिए सामाजिक और आध्यात्मिक मूल्य के रूप में प्रेम को महत्त्व दिया। ऐसा प्रेम जो व्यक्ति और समाज के परिष्कार का औजार बने जो समानता और एकता का आधार हो। यह प्रेमानुभूति नारी से प्राप्त होती है। उन्होंने सामन्ती नारी जो भोग्या मात्र बनकर रह गयी थी, जिसकी प्रतिष्ठा नही के बराबर थी उसे पति–पत्नी के मधुर सम्बन्धों के माध्ये से सामाजिक प्रतिष्ठा प्रदान की है। सन्तों ने यद्यपि कनक–कामिनी की निन्दा की है, पारिवारिक सम्बन्धों को क्षणिक और बन्धन का कारण बताया है तथापि यह भी निर्विवाद रूप से प्रमाणित है कि अधिकांश सन्त गृहस्थ थे। कबीर भी ऐसे ही सन्त थे जो गृहस्थ जीवन व्यतीत करते हुए परम् तत्त्व की आराधना में लगे हुए थे।

कबीर काव्य की विशेषतः 'साखी' में उनके नारी (स्त्री) विषयक चिन्तन स्पष्ट दिखाई देता है। इनमें से 'कामी' को 'अंग' एवम् 'सुन्दरी को अंग' साखी में नारी सम्बन्धी विचार झलकते है।

कबीर का रत्री विषयक चिंतन–कबीर का आविर्भाव उस समय हुआ, जब भारतवर्ष में स्त्री की दशा अच्छी नहीं थी। देश पर मुसलमानों का आधिपत्य हो चुका था। उस समय स्त्री राजाओं के भोग–विलास की धरतबनी थी। चूंकि नारी का यह रूप पुरुष को ईश्वर विमुख कर रहा था। अतः कबीरदास जैसे अक्खड मिजाज फायर कवि को यह इतना अखरा कि उनका स्त्री–विषयक चिंतन ही इस बात पर केंद्रित हो गया कि रखी माया का ऐसा रूप है, जो पुरुष को ईश्वर से विमुख कर सांसारिक विलास की ओर आकृष्ट करती है।

कबीरदास अपने मन की बात मानने वाले कवि थे, अतः एक बार उन्होंने स्त्री विषयक अपनी जो धारणा बना ली ये सदैव उस पर अडिग रहे। वे स्त्री को माया का रूप मानते हुए यह भूल गए कि पुरुष–प्रधान भारतीय समाज में निरंतर सती का शारीरिक, मानसिक व भावात्मक शोषण हो रहा है। कबीरदास जी के साहित्य के अध्ययन के आधार पर उनके सी संबंधी चितन का विवेचन निम्नलिखित बिंदुओं के आधार पर किया जा सकता है

1. **स्त्री : माया रूप**–कबीरदास के स्त्री विषयक चिंतन की सर्वप्रमुख विशेषता स्त्री को माया का प्रतिरूप मानना रहा है। ये स्त्री को एक ऐसी मायादिनी शक्ति के रूप में देखते हैं, जो पुरुष को परमात्मा से मिलने से

रोकती है। उनकी दृष्टि में स्त्री एक ऐसी पाटी है, जिसे पार करके पुरुष्य का ईश्वर तक पद पाना बड़ा कठिन है—

"चलो—चलो सब कोउ कहे, पार न पहुँचे कोय।

एक कनम अरु कामिनी, दुर्गम घाटी दोय।"

नारी उनकी दृष्टि में ऐसे मायाविनी है, जो पुरुष के भक्ति, मुक्ति और  ध्यान संबंधी तीनों गुणों को नष्ट कर देती है—

"नारी नसावे तीन गुण, जो नर पासै होय।

भक्ति मुक्ति निज ध्यान में पैठ सकै नहीं कोय।"

कबीरदास के अनुसार स्त्री हरि स्मरण में बांधक और कुमति की जन्मदात्री है। के मध्य व्यवधान खड़ा कर देती है। आत्मा को परमात्मा से मिलने नहीं देती

''कबीर माया पापिनी, हरि से करै हराम।

मुखि कड़ियाली कुमति की, कहण न देई राम।।''

कबीर के अनुसार स्त्री का मायावी आकर्षण इतना अधिक है कि सर्प पर भी उसकी परछाई पड़ जाए तो वह अंधा हो जाता है, पुरुष, जो सदैव नारी के समीप रहता है, इससे उसकी स्थिति का अनुमान सहज ही लगाया जा सकता है

''नारी की झांई परत, अंधा होत भुजंग।

कबीरा तिनकी कौन गति, जो नित नारी के संग।''

कबीरदास नारी को माया के रूप में ऐसी ठगिनी बताते हैं, जो मीठी वाणी में बात करती है, परंतु त्रिविध फँास लिए डोलती है और पुरुष को फँसा लेती है। इसका प्रभाव केवल पुरुष पर ही नहीं है अपितु बड़े—बड़े देवताओं पर भी है। वे कहते हैं

''माया महाठगिनी हम जानी

तिरगुन फाँस लिए कर डौले बोलै मधुरी बानी।''

केशव के कमला होई बैठी, सिव के भवन भवानी

पंडा के मूरत होय बैठी, तीरथ हूँ में पानी।''

**2. स्त्री** : आत्मा रूप—कबीरदास ने जहाँ एक ओर स्त्री को माया का प्रतिरूप बताकर उसे आत्मा और परमात्मा के मिलन में बाधक बताया है, वहीं उन्होंने स्त्री को जीवात्मा रूप में भी देखा है, जो परमात्मा से मिलन हेतु आतुर है। इस दृष्टि से उन्होंने आत्मा को पत्नी तथा परमात्मा को पति रूप में प्रस्तुत किया है। आत्मा रूपी स्त्री का परमात्मा रूपी प्रियतम से मिलने की आतुरता को कबीरदास जी ने इन शब्दों में प्रकट किया है

''दुलहनी गावहु मंगलाचार,

हम धरि आए हो राजा राम भरतार।

तन रत करि मैं मन रत करिहूँ, पंचतंत्र वराती

रामदेव मौरै पाँहुनै आये, मैं जावन मैं माती।।''

**3. पतिव्रता रूप की प्रशंसा**–एक ओर जहाँ कबीरदास जी ने स्त्री को माया का प्रतीक मानते हुए जगह–जगह उसकी घोर निंदा की है, वहीं दूसरी ओर उन्होंने पतिव्रता स्त्री की प्रशंसा भी दिल खोलकर की है। हालांकि उनकी यह प्रशंसा उनके पुरुष प्रधान चिंतन को अधिक स्पष्ट करती है क्योंकि कहीं भी उन्होंने पत्नीव्रत धर्म का पालन करने के विषय में कुछ नहीं कहा है। पतिव्रता स्त्री की प्रशंसा करते हुए वे कहते हैं–

पतिव्रता मैली भली, काली, कुचित कुरूप।

पतिव्रता के रूप पर, वारौं कोटि सरूप।''

यही नहीं वे कहते हैं कि पतिव्रता स्त्री यदि अभावग्रस्त हो तो परमात्मा को ही लज्जा का अनुभव होता है।।

''उस संम्रथ का दास हौं, कदे न होई अमाज।

पतिव्रता नाँगी रहै, तो उसही पुरिस को लाज।''

इस प्रकार कहा जा सकता है कि स्त्री विषयक कबीर का चिंतन स्त्री के प्रति उदार नहीं है। उनकी दृष्टि में स्त्री माया का प्रतीक है तथा वह पुरुष को परमेश्वर से मिलने में वाधा उत्पन्न करती है। इसी प्रकार वे आत्मा को स्त्री तथा परमात्मा को प्रियतम कहकर भी स्त्री की पुरुप के प्रति वशीभूतता को ही चित्रित करते हैं। यही नहीं वे पतिव्रता स्त्री की भरपूर प्रशंसा करते हैं, परन्तु इससे भी स्त्री के प्रति उनकी जो चिंतन व्यक्त होता है, वह उसे पुरुष की सेविका के रूप में ही प्रस्तुत करता है।

# 2. कबीर की मानवतावादी दृष्टि

कबीर जी सहज में आस्था रखने वाले मानवतावादी व्यक्ति थे। इस्लाम को स्वीकार करने पर भी मजहबी कट्टरता से वह कोसों दूर थे। उनका कोई लगाव किसी रूढ़ और अन्ध मर्यादा में नहीं था। हृदय की स्वच्छ कसौटी पर विवेक की जो खरी लीक बनती उसे ही कबीर साहब सही मानते। अनुभव की तुला पर तथ्य और सत्य की परख कर ग्रहण या त्याग की पद्धति ही उनका जीवन क्रम बन गया था।

'मानव' ईश्वर की सर्वश्रेष्ठ रचना है। परन्तु मानवीय गुणों के कारण ही उसकी पहचान होती है। करूणा, त्याग, क्षमा, प्रेम, दया, ममता सहिष्णुता, सेवा समर्पण आदि उदात्त गुणों के कारण मानव की मानवता समूची सृष्टि के लिए कल्याणकारी होती है। जिस व्यक्ति में इन शाश्वत गुणों का विकास हो चुका है, वह सही अर्थों में मानव है। इन्हीं गुणों के कारण मानव सृष्टि का श्रेष्ठतम प्राणी सिद्ध होता है। कबीरदास जी कहते भी है–

मानुस जन्म दुरलभ अहै होइ न दूजो बार।

सच्चा मानव वहीं है जो समस्त वसुधा को अपना परिवार मानता है। सच्चा धर्म जाति–पांति के भेद–भाव को स्वीकार नहीं करता। प्राणी किसी भी धर्म अथवा जाति का हो, सभी का परम पिता तो वह ईश्वर ही है। हमारी धार्मिक संकल्पनाएँ भी इसी मूल–मन्त्र का समर्थन करती हुई प्रतीत होती हैं। नीति ग्रन्थ भी यही सलाह देते हैं –

अयं निजः परोवेति गणना लघुचेतसाम्।

उदार चरितानां तु वसुधैव कुटुम्बकम्।।

यह उदार दृष्टिकोण ही सच्ची मानवता की स्थापना करता है। विशेषकर, धाार्मिक, सहिष्णुता तथा मानवीय एकता की भावना 'मानवतावाद' की पहचान है। एक सच्चा मानवतावादी कवि भाषा, धर्म, जाति, सम्प्रदाय और संस्कृति के आधार पर ही किसी प्रकार के भेद–भाव अथवा ऊँच–नीच में विश्वास नही करता। कबीर–साहित्य का जब हम इस दृष्टि से आकंलन करते हैं तो यह बात स्पष्ट हो जाती है कि वे एक सच्चे मानवतावादी कवि थे। ऐसा इसलिए क्योंकि वे मानव मात्र मे ंएक ही दिव्य ईश्वरीय ज्योति को देखते थे। इसी आधार पर उन्होंने मानवीय एकता का प्रतिपादन किया और मानवतावाद की भावना को सुदृढ़ किया। वे तो स्पष्ट कहते थे–

"एक बूँद तै सृष्टि रची है, कौन बाभन कौन सूदा।

मानवता को समझने के उपरान्त कबीरदास के मानवतावाद का विवेचन निम्नलिखित बिन्दुओं के आधार पर किया जा सकता है।

### 1. कबीरकालीन परिस्थितियाँ

कबीर के मानवतावाद की स्थापना में उनके समकालीन परिवेश का बड़ा महत्त्व है। कबीर युगीन समाज पूर्णतया अस्त–व्यस्त था। उस समय की राजनैतिक अवस्था सामाजिक विश्रृंखलता तथा धार्मिक विषमता इतनी जटिल समस्य बन चुकी थी कि सामान्य व्यक्ति का जीवन दूभर हो गया था। मुसलमान शासक जहाँ एक और अपनी

शक्ति की स्थापना कर रहे थे, वहाँ दूसरी और मुस्लिम धर्म के प्रचार–प्रसार को प्रश्रय भी दे रहे थे। उस समय दिल्ली के बादशाह सिकन्दर लोदी ने काशी आकर हिन्दुओं को इसलिए दण्डित किया क्योंकि उन्होंने मुसलमानों का विरोध किया था। अनन्त दास रचित 'कबीर परचई' से पता चलता है कि सिकन्दर लोदी ने कबीर को हाथी से कुचलवाया और जंजीरों से बाँध कर उन्हें गंगा में फेंकवा दिया।

स्याह सिकन्दर कासी आया। काजी मुल्ला के मन भाया।

कहै सिकन्दर ऐसी वाता। हूँ तोहि देषू दोजिग नाता।

गाफल संक न मानै मोरी। अव देषू साँची करामति तोरी।

वाँध्यो पग मेल्यो जंजीरू। ले बोरयो गंगा के नीरू ।।

कबीर काल में परिस्थितियाँ काफी विपरीत हो चुकी थीं। तत्कालीन वौद्ध, जैन और मुसलमान अपने–अपने धर्म का प्रचार कर रहे थे। उधर नाथ पन्थी योगी चमत्कार प्रदर्शन द्वारा जनता को दिग्भ्रान्त कर रहे थे। सभी धर्म भूत–प्रेत, जादू–मन्त्र तथा देवी–देवताओं के चक्र में फंसे हुए थे। हिन्दू धर्म की स्थिति भी काल अच्छी नहीं थी। यह वर्णाश्रम और वर्ग भेद का शिकार बना हुआ था। छापा, तिलक, तीर्थ–व्रत आदि के द्वारा वैष्णव लोगों को प्रभावित करने में संलग्न थे। समूचा समाज रूढ़ियों, आडम्बरों तथा जड़–परम्पराओं का शिकार बना हुआ था। अतः इन विकृतियों को दूर करने के लिए एक सहज मानव धर्म की आवश्यकता अनुभव की जा रही थी और कबीरदास ने ही यह कार्य सम्भव किया। कवीर के काल में हिन्दुओं और मुसलमानों में अनेक मतभेद थे। हिन्दू बहुदेववादी थे और मुसलमान एकेश्वरवादी थे। इसलिए दोनों में संघर्ष केवल धार्मिक ही नहीं था बल्कि वर्गीय भी था। जहाँ हिन्दू समाज वर्ण व्यवस्था के कारण विभक्त था, वहाँ मुस्लिम समाज शिया और सुन्नी दो वर्गों में विभक्त हो चुका था।

**2. कबीर का मानवतावादी दृष्टिकोण** – कबीरदास ने इन रूढ़ियों पर प्रहार किया। वे मानवतावाद के पक्षधर थे। वे पढ़े–लिखे नहीं थे, लेकिन बहुश्रुत थे। उन्होंने अनुभव किया कि हिन्दू और तुर्क में कोई भेद नहीं है। ये भेद केवल जन्म विधि के कारण हैं। जिस रास्ते से हिन्दू आया उसी रास्ते से मुसलमान भी आया है। वे कहते भी हैं

जो तूं बाभन वभनी जाया तौ आन बाट होइ काहे न आया।

जो तूं तुरक तुरकनी जाया तो भीतरि खतना क्यों न कराया।।

व्रत, उपवास, तीर्थ, पूजा, नमाज, जटाधारण, भस्मदेव, पत्थर पूजा, मूर्ति पूजा, रोजा, नमाज, माला, छापा, तिलक, गंगा स्नान आदि सभी को वे रूढ़ियाँ मानते थे तथा इनके विरुद्ध उन्होंने अपनी वाणी को बुलन्द किया। उनका कहना था कि गंगा–यमुना में स्नान करने से मनुष्य के मन की मैल दूर नहीं होती। जब तक चित्त की शुद्धि नहीं होगी हृदय निर्मल नहीं होगा। ये बाह्य आडम्बर व्यर्थ हैं।

गंगा नहाइन यमुना नहाइन नौ मन मैल लिहिन–चढ़ाइ।

पाँच पचीस के धक्का खाइन घरहूँ कै पूँजी दिहिन गवाँइ।।

कवीरदास का विचार था कि योग के आडम्बर करने वाले, बाल मुंडवाने वाले या जटाधारण करने वाले ये सभी अहंकारवादिता के परिचायक हैं। ये लोग अपनी श्रेष्ठता सिद्ध करना चाहते हैं। अतः इनको मानवतावादी नहीं कहा जा सकता। ये लोग सत्य पथ से दूर हैं। उनका विचार था कि हरि स्मरण के बिना मानव का जीवन व्यर्थ है। वे पूर्णतया समदर्शी थे। उनकी न तो किसी से मित्रता थी न ही किसी से शत्रुता थी। न वे मुल्लाओं से प्यार करते थे न पण्डितों से दुश्मनी करते थे। वे तो सबका भला चाहते थे। इस दृष्टि से हम कह सकते हैं कि वे एक

महामानव थे। एक ओर वे पण्डित व योगी को फटकारते हैं तो दूसरी ओर मौलवी और फकीर की खबर लेते हैं। उन्होंने स्पष्ट कहा कि 'कुरान', 'कतेब' पढ़ने से फिक्र दूर नहीं होताय इसके लिए मन को स्थिर बनाकर खुदा की भक्ति करनी होगी। तभी ईश्वरीय आनन्द का मजा लिया जा सकता है। – उन्होंने मानवीय संवेदना के दृष्टिकोण को अपनाते हुए समूची मानव जाति के कल्याण के लिए प्रयत्न किया। इस दष्टि से उनके दो रूप हमारे सामने उभरकर आते हैं–उपदेशात्मक रूप तथा ईश्वरभक्त रूप। उपदेशात्मक रूप में कबीर का दृष्टिकोण पूर्णतः मानवतावादी हैं। वे न केवल एक सच्चे समाज सुधारक थे, बल्कि एक उपदेशक भी थे। वे हर प्रकार से सामाजिक कोढ़ से ग्रस्त मनुष्यता को मुक्त करना चाहते थे। उन्होंने कुछ भी कहा, अपने अनुभव के आधार पर कहा, जो कुछ गलत देखा उसे कह दिया। इसीलिए तो उन्होंने पण्डितों व मौलवियों दोनों को चुनौती दी।

तू कहता कागद की लेखी, मैं कहता आँखिन की देखी।

**3. मानवीय एकता के पक्षधर**–वस्तुतः कबीर का समूचा चिन्तन मानव जाति से सम्बन्धित है। उन्होंने मानवता के निर्माण के लिए काव्य रचना की। उनका पूरा विश्वास है कि अज्ञान के कारण ही मानव और मानव में विषमता–जन्य विवाद है। ईश्वर ने सभी को एक–सा बनाया है। परन्तु आपसी भेद–भाव मानव का ही देन है जाति–पाँति, छूत–अछूत, छोटा–बड़ा, ब्राह्मण–शूद्र, मन्दिर–मस्जिद आदि मानवीय विकृतियों के परिणाम है। उन्होंने अपने युग के विकृत मानव समाज को देखा और सभी धर्मों, जातियों व सम्प्रदाओं में समन्वय स्थापित करने का प्रयास किया। यही कारण है कि कहीं–कहीं कबीर की वाणी काफी कठोर वन गई है। व्यक्तिगत सुख–दुःख की परवाह न करते हुए उन्होंने हिन्दू व मुसलमान दोनों को फटकार बताई। वे कहते भी है

कंकर पत्थर जोड़ के, मस्जिद लयी बनाय।

ता चढ़ मुल्ला वांग दै, बहिरा हुआ खुदाय।।

दुनियाँ ऐसी बावरी पत्थर पूजन जाए।

घर की चाकी कोई न पूजे जेहिका पीसा खाए।

कबीर परमतत्व में पूर्ण विश्वास रखते थे। उनका विचार था कि परमात्मा ने एक ही बूँद से पूर्ण सृष्टि को बनाया है। उस ईश्वर की दृष्टि में न तो कोई ब्राह्मण है न कोई शूद्र । यही कारण था कि उन्होंने निडरता के साथ हिन्दुओं व मुसलमानों की भर्त्सना की

पीरां मुरीदां काजियां मुलां अरू दरवेस।

कहाँ थे तुम्ह किनि कीये अकलि है सब नेस।

कुरांना कतेबा अस पढ़ि पढ़ि फकिरि या नहीं जाइ।

टुक दम करारी जे करै हाजिरां सूर खुदाइ।।

कबीर पढ़े–लिखे नहीं थे। परन्तु उनके पास लम्बा व गम्भीर अनुभव था। वे मानव की स्वार्थ लिप्सा के विरुद्ध थे। अतः उन्होंने कर्म के महत्त्व पर अधिक जोर दिया। उनका कहना था कि अच्छे कर्म करने से अच्छे परिणाम निकलते हैं और बुरे करने से बुरे। मनुष्य को अच्छे कर्म ही करने चाहिएँ। ऐसा करके ही वह सच्चा मानव बन सकता है। उनका यह भी विचार था कि ऊँच–नीच का भेद मानवता के लिए हानिकारक है। इस दृष्टिकोण ने मानवता को हानि पहुँचाई है। उनका यह भी विचार था कि वैभव सम्पन्न व्यक्ति ऊँचा नहीं है और न ही गरीब नीचा है। हम अपने कर्मों के कारण छोटे–बड़े होते हैं। हरि स्मरण में ही सच्चा सुख है, जिसके पास यह है वह महान् है।

कवीर हय गय गैबर सघन धन, छत्र धजा फहराइ।

ता सुखे थे भिष्या भली, हरि सुमिरत दिन जाइ।।

**4. समन्वयवादी दृष्टिकोण की स्थापना**–यहाँ ध्यान देने की बात यह है कि स्वयं कबीर जातीय संकीर्णता से आजाद थे। उनका जन्म एक विधवा ब्राह्मणी से हुआ और जुलाहा दम्पति ने उन्हें पाल–पोस कर बड़ा किया। उनके एक गुरु रामानन्द ब्राह्मण थे और दूसरे गुरु शेख तकी मुसलमान थे। इसलिए कबीरदास के जीवन में समन्वयवादी दृष्टिकोण होना स्वाभाविक था। उन्होंने स्वयं सामाजिक व आर्थिक विषमता को भोगा था। इसलिए मानवीय विसंगतियों से लड़ना उनका स्वभाव था। वे आदर्श मानव समाज की स्थापना करना चाहते थे। इसलिए उन्होंने न तो हिन्दुओं का पक्ष लिया और न ही मुसलमानों का। कबीरदास ने समाज में व्याप्त अंधविश्वास और भेद बुद्धि को नष्ट करके शुद्ध मानवतावाद का प्रचार किया। वे सभी को ईश्वर की सन्तान समझते थे, सभी को बराबर समझते थे। वे जातिवाद में विश्वास नहीं करते थे। उनके लिए तो सारा संसार ही परिवार था। कबीरदास ने मानवीयता और सामाजिक एकीकरण की भावनाओं का उन्नयन किया। इसीलिए हिन्दी साहित्य में हम कवीरदास को ही मानवतावादी कवि कह सकते हैं। कबीर एक क्रान्तिकारी, युग द्रष्टा थे। आधुनिक भारत में सम्भवतः महात्मा गाँधी ही कबीरदास के मानवतावाद को समझ पाए। यह एक उल्लेखनीय तथ्य है कि महात्मा गाँधी कबीर की वाणियों और चिन्तन धाराओं से अत्यधिक प्रभावित थे। गाँधी की माँ तो कबीर पंथ से प्रभाव था। कबीर के समान गाँधी की भी कथनी और करनी एक जैसी थी। दोनों ही सत्य के उपासक थे। दोनों राम भक्त थे, और दोनों मानवतावादी थे। कबीर ने कहा था कि

कहते हैं करते नहीं, सो तो बड़े लबार।

आखिर धक्का खाइहैं साहिब के दरबार।

दोनों ने मन, वाणी और कर्म के सामंजस्य पर बल दिया। दोनों ने मानवतावादी दृष्टिकोण का प्रतिपादन किया।

**5. आदर्श मानव की व्याख्या**–कबीर की दृष्टि में आदर्श मानव वही है जो ईश्वर में विश्वास रखता है ऐसा आदर्श मानव संसार के आकर्षण से दूर, भेदभाव से परे, सत्यनिष्ठ और मनसा वाचा कर्मणा एक होता है। यदि हमारा मन विषय वासनाओं में लीन है तो वह आदर्श मानव नहीं बन सकता। आदर्श मानव बनने के । लिए मन पर नियन्त्रण रखना नितान्त आवश्यक है।

कवीर मारों मन कूंटूक है जाइ।

विष की क्यारी वोइ करि, लुणत कहा पछिताइ।।

कबीरदास ने मानव समाज की एकता पर बल दिया। वे निश्चय से छल–कपट, पाखण्ड तथा अत्याचार के घोर विरुद्ध थे। वे शुद्ध ह्रदय, सादगी, स्पष्टता और प्रेम के प्रबल समर्थक थे। वे मानव– जीवन का केवल सुधार ही नहीं करना चाहते थे बल्कि उसका पूर्णतः काया कल्प करना चाहते थे। रविन्द्र नाथ ठाकुर ने कहा था कि मानव की आत्मा जब विश्वात्मा से एक हो जाती है तब मनुष्य सच्चे अर्थों में मानवधर्मी बन जाता है। कबीर की आत्मा भी विश्वात्मा से एक हो गई थी। उनकी आत्मा न केवल परमात्मा से मिल गई थी बल्कि प्राणी मात्र में उनको ईश्वर दिखाई देने लगा था। यह स्थिति एक सच्चे मानवतावादी को प्राप्त हो सकती है। यह स्थिति ही मानव को उदात्त बनाती है। यह स्थिति हमें प्रेरणा देती है कि हम दूसरों को अपने समान समझें, सबसे प्रेम करें व छोटे–बड़े के

भेदभाव को भूल जाएँ।

कबीरदास कहते भी हैं

तूं तूं करता तू भया मुझमें रही न हूँ।
वारी तेरे नाउं परि जित देखौं तित तूं।।

अतः उपर्युक्त विवेचन से यह स्पष्ट होता है कि यद्यपि कबीरदास ने निम्न वर्ग में जन्म लिया, परन्तु उन्होंने अपनी प्रतिभा से उच्च वर्ग को भी प्रभावित किया। कागद और मसि को स्पर्श न करने वाले कबीर आज भी एक महाकवि हैं। वे एक सच्चे महामानव और समाज–सुधारक हैं। सही अर्थों में तो हम उन्हें युग निर्माता कह सकते हैं। उन्होंने ऊँच–नीच के भेदभाव को समाप्त करके मानवतावाद की उद्घोषणा की। उनके जैसा निर्भीक, प्रखर कवि आज तक हिन्दी साहित्य में नहीं हुआ। उन्होंने जो मानवतावादी संदेश दिया, वह आज के राजनेताओं, धर्म–नेताओं और समाज नेताओं के लिए मार्गदर्शी हैं।

# 3. कबीर का रहस्यवाद

मानव में जबसे ज्ञान–बुद्धि – नामक तत्व की स्थिति हुई तभी से उसकी चिन्तन–प्रक्रिया से सुष्टि के उद्‌गम और अपने मूल के सम्बन्ध में जिज्ञासा रही है। उसने जब इस सृष्टि नियन्ता के स्वरूप की गुत्थी को ज्ञान का आश्रय लेकर सुलझाने का प्रयास किया तब यह दर्शन का विषय बन गया, किन्तु जब इसे कवि ने समझने का प्रयास कर अपने अनुभवों को वाणी की विशेष पद्धति मे अभिव्यक्त किया तब इसे 'रहस्यवाद' का गया।

संसार का लगभग प्रत्येक श्रेष्ठ कवि किसी न किसी अंश में रहस्यवादी होता है क्योंकि जन–मानव की भावनाएँ कवि के द्वारा अभिव्यक्ति पाती है। अमेरिकन प्रो0 प्राँर (Prof. Prar) का कथन उचित ही है–

"Every Poet has atleast a touch of Mysticism"

प्राचीन काल से ही व्यक्त एवं दृश्यमान जगत के भीतर अव्यक्त व्यापक सत्ता को खोजने के प्रयत्न चल रहे हैं। मानव अनेक विधियों द्वारा उस अव्यक्त और अदृश्य के साथ एकत्व स्थापित करने का प्रयास करता है। लेकिन फिर भी वह उसे जान नहीं पाता। ऋग्वेद आदि प्राचीन ग्रंथों में इस प्रकार के अद्वैत मूलक एवं रहस्यात्मक विचार अनेक स्थलों पर मिलते हैं। वैदिक ऋषियों ने तत्व–चिंतन के समय यह अनुभव किया है कि इस दृश्यमान जगत के नाम–रूपों में कोई सूक्ष्म सत्ता अवश्य विद्यमान है। वह सूक्ष्म सत्ता समूचे संसार का नियमन करती है। विश्व विद्यमान है। पर वह सूक्ष्म सत्ता अवर्णनी है। वहीं सत्ता समूचे संसार का नियमन करती है। विश्व की इसी अव्यक्त की जिज्ञासा से रहस्यवाद संबंधित है। "जब मानव आत्मा उस अव्यक्त सत्ता तक पहुंचने का प्रयास करती हुई विभिन्न प्रकार की अनुभूतियों को प्राप्त करती है और उन्हें भाषा के माध्यम से अभिव्यक्त करती है तो इस प्रकार के भाव समूह को साहित्यिक शब्दावली में रहस्यवाद कहते हैं।"

हमारे जीवन में रहस्यात्मकता है। कविता जीवन से संयुक्त है। अतः कविता में भी रहस्यात्मकता अनिवार्यतः समाविष्ट हो जाती है। आज तो रहस्यवाद के नाम से एक काव्यधारा भी स्वीकृत हो चुकी है।

रहस्यवाद– अर्थ अवं स्वरूप–रहस्यवाद अंग्रेजी भाषा के मिस्टिसिजम को पर्यायवाची है। यह 'रहस्य' और 'वाद' दो शब्दों के मिलने से बना है। 'रहस्य' शब्द के अनेक अर्थ हैं– अज्ञात रहस्यमयी बात, छिपा हुआ या गुप्तता। श्रीमद भगवद गीता में रहस्य शब्द भक्त तथा ईश्वर के संदर्भ में प्रयुक्त हुआ है। "भक्तोरवसि में सखा चेति।" संस्कृत कवि कालिदास ने अपने प्रसिद्ध नाटक अभिज्ञान शांकुतलम" में रहस्य शब्द का प्रयोग अर्थ–गोपन के अर्थ में किया है। रहस्य शब्द रह धातु में 'असुन' प्रत्यय लगने से 'रहस' तथा 'यत' प्रत्यय जुड़ने से रहस्य बना है। व्युत्पत्तिल्य्ये अर्थ के अंतर्गत इस का अर्थ प्रतीयमान सत्ता से संबंधित है। साहित्य के क्षेत्र में रहस्यवाद का अर्थ काव्यधारा विशेष, प्रवृतिविशेष और शैली विशेष होगा। उदाहरण के रूप में कबीर की वाणी में उसी अज्ञात एवं अदृश्य शक्ति को जानने की जिज्ञासा देखी जा सकती है–

चीन्ह चीन्ह क्या गाबहू, वाणी परी न चीन्ह।

अदि अन्त उत्पति प्रलय, आपुहिं के के लीन्हा बीजक

## रहस्यवाद की परिभाषाएं

विद्वानों ने रहस्यवाद की व्याख्या भिन्न–भिन्न प्रकार से की है–

1. आचार्य रामचंद्र शुक्ल का कथन 'ज्ञान के क्षेत्र में जिसे अद्वैतवाद कहते हैं, भावना के क्षेत्र में वही रहस्यवाद कहलाता है,
2. महादेवी वर्मा के अनुसार– ''असमीम का ससीम से संबंध ही रहस्यवाद है।''
3. डॉ. रामकुमार वर्मा– ''रहस्यवाद जीवात्मा की उस अंतनिर्हित प्रवृति का प्रकाशन है। जिसमें वह दिव्य और अलौकिक शक्ति से अपना शांत और निश्छल संबध जोड़ना चाहती है। यह संबंध यहां बढ़ जाता है कि दोनों में कुछ भी अंतर नहीं रह जाता।''
4. डॉ. गोविंद त्रिगुणायत द्वारा रहस्यवाद की परिभाषा –''जब साधक भावना के सहारे आध्यात्मिक सत्ता की रहस्यमयी अनुभूतियों को वाणी के द्वारा शब्दमय चित्रों में सजाकर रखने लगता है तभी साहित्य में रहस्यवाद की सृष्टि होती है।''
5. परशुराम चतुर्वेदी – ''रहस्यवाद शब्द काव्य की एक धारा विशेष को सूचित करता है। प्रधानमतः उसमें लक्षित होने वाली उस अभिव्यक्ति की ओर संकेत करता है जो विश्वात्मक सत्ता की प्रत्यक्ष, गंभीर एवं तीव्र अनुभूति के साथ संबंध रखती है। इस अनुभूति का वास्तविक आधार अंतह्रदय हुआ करता है। जो वैयक्तिक चेतना का मूल स्त्रोत है और इसमें 'इदम' 'एवं' है, जिसका लक्षण है– प्रेमाश्रयी अद्वैतानुभूति एवं प्रतीकाश्रयी सांकेतिक अभिव्यक्ति कबीर के काव्य में रहस्यवाद– कबीर हिंदी के प्रथमा रहस्यवादी कवि कहे जा सकते हैं। उनके असंख्य पदों तथा साखियों में उस अज्ञान, अवयक्त तथा अदृश्य परमशक्ति के प्रति नाना प्रकार की अभिव्यक्तियां मिलती हैं। कवि यत्र–तत्र उस परमात्मा की अनुभूति का परिचय भी देता है। यदि कबीर के रहस्यवाद के बारे में गहराई से चिंतन किया जाए तो स्पष्ट हो जाता है कि उनकी रहस्यवादी भावना, वेदांत हठयोग तथा सूफियों के प्रेम तत्वों पर आधारित है। वे एक सच्चे अद्वैतवादी के समान समस्त जगत में ईश्वर की सत्ता को स्वीकार करते हैं। शंकराचार्य ने भी इसी का समर्थन किया था। फिर भी कबीरदास जी उस परब्रह्म का वर्णन करने में असमर्थ हैं। वे कहते भी हैं –

"पारब्रह्म के तेज का कैसा है उनमान।

कहिबे कूं सोभा नहिं देख्यां हि परमान।"

अद्वैतवादी आत्मा–परमात्मा की एकता की चर्चा करते हैं। कबीरदास भी कुछ इसी की चर्चा करते हुए यह स्वीकार करते हैं कि आत्मा–परमात्मा का ही अंश है, परंतु उनमें भेद उत्पन्न करने वाली माया है।

अज्ञान तथा अविद्या के कारण सांसारिक प्राणी अंश–अंशी के संबंध को पहचान नहीं पाता। माया उसे बार–बार भ्रमित कर देती है। माया तो संसार के सभी प्राणियों को भ्रमित करती है। कबीरदास ने माया को ''महाठगिनी'' कहा है। इससे छुटकारा पाना सहज नहीं है। परंतु जिन साधकों पर सदगुरु की कृपा होती है वे उस माया से मुक्त हो जाते हैं। माया की निन्दा करते हुए कवि कहता है कि –

"कबीर माया पापणी हरि सूं करै हराम।

मुख कड़ियाली कुमति की, कहन न देइ राम।।"

## कबीर के रहस्यवाद के दो रूप –

कबीर की रहस्यवादी भावना पर जहां एक ओर वेदों तथा उपनिषदों का प्रभाव है तो दूसरी ओर सिद्धों और नाथों

का प्रभाव देखा जा सकता है। यही नहीं सूफियों के प्रेम भावना ने भी उनके रहस्यवाद को प्रभावित किया। फिर भी कबीर की रहस्यभावना काफी उलझी हुई और अस्पष्ट है। इसके दो कारण हैं–एक तो वे भावना की अपेक्षा साधना को अधिक महत्व देते हैं। दूसरा हठयोग की भावना भी उनके रहस्यवाद की भावना को दुरूह बना देती है। कबीर के रहस्यवाद के दो रूप हैं– भावनात्मक रहस्यवाद तथा साधनात्मक रहस्यवाद परंतु डॉ. गोविंद त्रिगुणायत ने कबीर की रहस्य भावना के चार रूप माने हैं–

(क) भावात्मक रहस्यवाद

(ख) यौगिक रहस्यवाद

(ग) पारिभाषिक रहस्यवाद

(घ) अभिव्यक्तिमूलक रहस्यवाद

वस्तुतः उन चार रूपों में से अंतिम तीन साधनात्मक रहस्यवाद के ही अंग हैं। डॉ. सरनाम सिंह ने कबीर की रहस्य भावना के चार उपादान स्वीकार किए हैं– आस्तिकता, प्रेम भावना, गुरु तथा मार्ग।

### (क) भावात्मक रहस्यवाद

कबीर के भावात्मक रहस्यवाद की तीन अवस्थाएं स्वीकार की जा सकती हैं।

### अनुराग

यह कबीर के रहस्यवाद की प्रथम अवस्था है। जिसकी परिणति विरह में होती है। ईश्वर के प्रति अनुराग की जागृति गुरुकृपा से होती है। गुरु कृपा से साधक के दिव्य चक्षु खुल जाते हैं तथा उसे अन्नत के दर्शन होने लगते हैं। परमतत्व की झलक मात्र से ही कबीर का हृदय आनंत विभोर होता है। गुरु कृपा की चर्चा करते हुए वे कहते हैं –

"सतगुरु हम पर रीझि कर एक कह्या प्रंसग।
बरसया बादल प्रेम का भीजि गया सब अंग।।
ग्यान प्रकास्या गुरु मिल्ला, सो जिनि बीसरि जाइ।
जब गोविन्द कृपा करी, तब गरु मिलिया आइ।।"

यहां अनुराग की परिणति प्रेमाबूति में हो जाती है। संसार के मोह माया साधक को काटने दौड़ते हैं। इससे बचने का एक मात्र उपाय है 'हरिस्मरण' परंतु जीवात्मा अभी तक सांसारिक मोहमाया से मुक्त नहीं हो पाई। अभी तक संसार के आकर्षण उसे बार–बार अपनी और खींचते हैं। अतः जीवात्मा न तो परमात्मा के पास जाने योग्य है तथा न ही उसे अपने पास बुला सकती है।

"आइ न सकौं तुज्म पैं, सकूं पै तुझै बुलाइ।
जियरा यौंही लेडुगे, बिरह तपाइ तपाइ।।

कवि की यह प्रेमानुभूति धीरे–धीरे बिरहानुभूति में बदल जाती है। अब विरहिणी आत्मा अपने प्रियतम परमात्मा से मिलने के लिए बहुत आतुर है। वह रात दिन उसके पथ पर खड़ी उसकी प्रतीक्षा करती रहती है। प्रीतम से मिले बिना उसे पलभर का चैन भी नहीं है।

कबीर की दृष्टि में विरहानुभूति के बिना ईश्वर की प्राप्ति नहीं हो सकती। इसलिए 'विरह कौ अंग' में कबीर साहित्य अद्वितीय बन पड़ा है। ऐसा लगता है मानो कबीर की सी अनुभूति हिंदी के अन्य कवियों में बहुत कम देखने

को मिलती है। प्रियतम को पाने के लिए वे शरीर को स्याही तथा हडिडयों को लेखनी बनाकर प्रभु को प्रेम पत्र भेजना चाहते हैं।

यह तनु जारौं मसि करौं लिखौ राम का नाम।
लेखनि करूं करक की लिखि–लिखि राम पठाऊ।।
बहुत दिनन की जोहनि बार तिहारी राम।
जिव तरसै तुझ मिलन कूं, मनि नाहिं विश्राम।।"

## परिचय

कबीर के रहस्यवाद की यह दूसरी अवस्था है। ज्ञानी जन इसे 'आत्मज्ञान' की संज्ञा भी देते हैं। सूफी इसे 'फना' कहते हैं। कबीर ने इसके लिए 'वर–वधू' के विवाह का रूपक प्रयुक्त किया है। 'परचा को अंग' में इसी अवस्था का मार्मिक वर्णन किया गया है। इसमें कबीरदास जी आत्मा तथा परमात्मा के संबंध का सुंदर वर्णन करते हैं। कबीर दास जी कहते हैं –

'कबीर तेज अनन्त का मानौ ऊगी सूरज सेणि।
पति संगि जागी सुन्दरी, कौलिग दीठा तेणि।।"

इस अवस्था में आत्मा–परमात्मा का पूर्ण वरण कर लेता है। कवि इसे 'रवि ससि बिना उजास' कहता है परंतु कबीरदास स्वीकार करते हैं कि परिचय की अनुभूति व्यक्त करके भी उन्हें संतोष नहीं है। वे कहते हैं –

"पार ब्रह्म के तेज का कैसा है उनमान।
कहिवे कूं सोभा नहिं, देख्या ही परमान।।"

परिचय की यह अवस्था ऐसी प्रतीत होती है मानो जीवात्मा रूपी प्रेमिका परमात्मा रूपी प्रिय में लीन हो रही है। इस अवस्था को प्राप्त कर विरह की ज्वाला शांत हो गई है। परिचय की अवस्था में कबीर एक ज्ञानी भक्त तथा रहस्यवादी प्रतीत होने लगते हैं। पानी तथा हिम के रूपक द्वारा कबीर ने परिचय की स्थिति को व्यक्त किया है–

"पानी ही ते मि भया, हिम है गया बिलाए।
जो कुछ या सोहिभया, अब कुछ कहा न जल जाए।।"

अब कवि के ह्रदय में ईश्वर प्रेम प्रकाशित हो गया है। आत्मा परमात्मा का जो सनातन संबंध था, वह जाग उठा है। प्रेम भावना के जागृत होने के कारण अज्ञान से उत्पन्न भ्रम भी अब नष्ट हो गया है।

"पिंजर प्रेम प्रकासिया, अन्तरि भया उजास।
मुख कसतूरी महमहीं, बांणी फूटी बास।।"

## मिलन

कबीर के भावात्मक रहस्यवाद की यह अंतिम अवस्था है, इसे 'सिद्धावस्था' भी कहा जा सकता है। इस स्थिति में पहुंचकर 'मैं' और 'तू' का भेद मिट जाता है। यह अवस्था आत्मा–परमात्मा के पूर्ण विलय की अवस्था है। 'बूंद समानी सुंद में' और समुंद समाना बूंद में। की स्थिति लगभग ऐसी ही है। मिलन की अवस्था में कवि आत्मा तथा परमात्मा के मिलन के बड़े ही ह्रदयाकर्षक चित्र अंकित किए हैं। अब जीवात्मा के आराध्य स्वयं उसके पास आ गए हैं तथा उसके जीवन की साधना अब सफल हुई है। जीवात्मा इस मिलन से उत्पन्न उल्लास तथा आह्लाद के

कारण आनंदित हो उठती है।

अब साधक को प्रियतम की प्राप्ति हो गई है। वह किसी भी स्थिति में प्रभु से अलग होना नहीं चाहता। जीवात्मा अनुनय–विनय करके प्रियतम को रिझाने का प्रयास करती है। मिलन की स्थिति में जीवात्मा के सभी संशय दूर हो गए हैं और उसे आनंद की प्राप्ति हो गई है। अब जीव और ब्रह्म की अभेदमयी अवस्था उत्पन्न हो चुकी है। इस अवस्था में दोनों एकात्म हो गए हैं और साधक को ब्रह्ममयी दिव्य आभा के दर्शन होने लगते हैं। इसी स्थिति का वर्णन करते हुए कबीरदास कहते हैं–

लाली मेरे लाल की जित देखूं तित लाल।
लाली देखन मैं गई मैं भी हो गई लाल।।
तूं तूं करता तूं भया मुझ में रही न हूं।
वारी फेरी बलि गई जित देखों तित तूं।।

कबीरदास के रहस्यवाद में आस्तिकता का विशेष महत्व है। इसलिए उसमें प्रेम भक्ति स्वतः समा जाती है। उनके रहस्यवाद को किसी विशेष कोटि में नहीं रखा जा सकता। क्योंकि कबीर ने पूर्ण सत्य को पहचानने का प्रयास किया है उसमें गुरु का विशेष महत्व है और माया के प्रति सावधानी दर्शायी गई है, क्योंकि माया आत्मा और परमात्मा के मिलन में बाधा उत्पन्न करती है। अंततः कबीर के रहस्यवाद में जहां एक ओर आध्यात्मिकता है वहां दूसरी ओर आत्मा तथा परमात्मा के संबंध में दांपत्य भावना का सुंदर रूपक भी अपनाया गया है।

**साधनात्मक रहस्यवाद**

पहले बताया जा चुका है कि कबीर पर नाथो, सिद्धों तथा योगियों की विचारधारा का पर्याप्त प्रभाव रहा है। उन्होंने आत्मा का भी प्रयोग किया है। महर्षि पतंजलि ने भी स्वीकार किया है कि जो ब्रह्मांड में है वही पिंड में भी है। अतः ईश्वर प्राप्ति के लिए नाना प्रकार की साधनाएं शरीर में भी की जा सकती हैं। परंतु कबीरदास ने ढोंगी योगियों तथा हठसाधना करने वालों की कड़ी आलोचना भी की है। कबीरदास की रचनाओं में मन उल्टी चाल, उन्मनावस्था, बटचक्र, अनहदनाद, गगन–गुफा, इडां–पिंगला और सुषुम्ना नाड़ियों, ब्रह्मरंध्र आदि का वर्णन मिलता है। दो एक उदाहरण देखिए–

नहद बाजै नीझर झरै, उपजै ब्रह्म गियान।
अवगति अंतरि प्रगटै, लागै प्रेम धियान।।
गगन गरजै बरसै अमी, बादल गहिर गा भीर।
चहुं दिसि दमके दामिनी भीजै दास कबीर।।

कहीं–कहीं कबीरदास जी उस परम सत्ता के लिए विभिन्न रूपकों, उलटबांसियों, पारिभाषिक शब्दों तथा प्रतीकों का भी प्रयोग करने लगते हैं। ऐसे में भावना की अपेक्षा यौगिक क्रियाओं की चर्चा अधिक रहती है। इसलिए कबीर का रहस्यवाद शुष्क तथा जटिल हो गया है। हठयोग की प्रक्रिया का वर्णन करते समय कबीरदास जी योग साधना के विभिन्न शब्दों का प्रयोग करते हैं। ऐसे प्रयोगों से यह स्वतः स्पष्ट होता है कि वे सिद्धों तथा योगियों से प्रभावित हैं।

## निष्कर्ष

उपर्युक्त विवेचन से स्वतः स्पष्ट हो जाता है कि कबीर वाणी में भावात्मक तथा साधनात्मक दोनों प्रकार का रहस्य देखा जा सकता है। परंतु जहां उन्होंने साधनात्मक रहस्यवाद का सहारा लिया है वहां उनकी कविता शुष्क हो गई है। परंतु भावनात्मक रहस्यवाद में कबीर ने स्वयं को ईश्वर की पत्नी मानकर जो विचार व्यक्त किए हैं, वे सर्वथा अनूठे हैं। उनके रहस्यवाद पर अद्वैतवाद का सर्वाधिक प्रभाव है। यद्यपि उन्होंने ईश्वर के निर्गुण निराकार रूप की वंदना की है परंतु प्रेमतत्व के मिश्रण के कारण उनका काव्य भावनात्मक हृदय को छू लेता है।

निष्कर्ष रूप में हम कह सकते हैं कि कबीर हिंदी के प्रथम परंतु उत्कृष्ट रहस्यवादी कवि थे। उनके रहस्यवाद में जो अनुभूति की तीव्रता तथा गहनता है, भावों की मधुरता तथा विरह की व्यापकता है, वह अन्यत्र दुर्लभ है। केवल जायसी तथा महादेवी ही उनकी रहस्यानुभूति का स्पर्श करते दिखाई देते हैं। श्याम सुंदर दास ने उचित ही कहा है– ''रहस्यवादियों में कबीर का आसन सबसे ऊंचा है। शुद्ध रहस्यवाद केवल उन्हीं का है।''

# 4. कबीर के राम

कबीर वाणी में राम शब्द का प्रयोग कई बार हुआ है। यद्यपि कबीर की 'राम' सम्बन्धी संकल्पना भारतीय–चिन्तन के मूल से ही आई है। किन्तु उनका 'राम' अद्वैतवाद, विशिष्टाद्वैतवाद, इस्लामी एकेश्वरवाद, नाथों के शून्यवाद और योग के निरंजनवाद आदि की सीमाओं में बाँधकर रह जाने वाला परमतत्त्व नहीं है। उनका राम वादों के दायारे का अतिक्रमण करता हुआ उनका स्वानुभूत राम है। कबीर का नाम 'निरगुन' है, 'सगुन' नहीं। उन्होंने 'निरगुण राम' के जप का ही उपदेश दिया है– 'निरगुन राम जपहु रे भाई' इसके साथ ही उन्होंने 'दसरथ–सुत तिहुँ लोक बखाना। राम नाम का मरम है आना' कहरि दशरथ के पुत्र राम की अर्थात् सगुण ब्रह्म की उपासना के प्रति अपनी अनास्था प्रकट की है। कबीर की रमैनियों में रामतत्त्व की व्याख्या बड़े विस्तारपूर्वक की गई है। कबीर के राम दाशरथी राम, कृष्ण वामनावतार, परशुराम इत्यादि सभी से अलग हैं। कबीर के नाम न तो कहीं आते जाते हैं न ही उनके कोई माँ–बाप ही हैं।

नां सो आवैं नां बो जाई ताके बंध पिता नहीं माई।

उनके राम तो शरीर रहित हैं–

जो या देही रहित है सो है रमिताराम।

कबीर के राम अविगत और निराधार हैं। उसका पार कोई नहीं पा सकता। न ही उसका कोई गाँव है और न ही कोई रूप रंग। वे युव वृद्ध या बालक भी नहीं है। कबीर के राम को किसी भी युक्ति से पूर्णतः जानना कठिन है। वे तो परमात्मा के समान हैं। रामानन्द का शिष्य होने के कारण कबीर की भक्ति में भी वैष्णव–तत्त्वों की प्रधानता थी। उन सभी तत्त्वों में प्रमुख था– 'राम–राम'। रामानन्द द्वारा प्रवर्तित राम–नाम के आन्दोलन को कबीर ने और आगे बढ़ाया। अपने गुरु की भांति कबीर भी राम–नाम में अद्भुत शक्ति मानते हैं, किन्तु उसका सम्बन्ध उन्होंने विशेष ध्यान और स्मरण से जोड़ा है।

प्रस्तुत कबीरदास के राम सगुण राम न होकर ईश्वर के पर्याय रूप में प्रयुक्त हुए हैं। कबीर के 'राम' का विवेचन निम्नलिखित बिन्दुओं के आधार पर किया जा सकता है।

**1. पौराणिक नामों का प्रयोग**

यह कबीर का राम यह हरि कौन है? क्या यह परब्रह्म है, ईश्वर है या वह इनसे भी कुछ अलग है। इसमें कोई सन्देह नही कि कबीरदास हरि, गोविन्द, राम, केशव, माधव आदि पौराणिक नामों का प्रयोग निर्गुण ईश्वर के अर्थ में करते हैं। लेकिन वे इन शब्दों का प्रयोग सहसा नहीं करते। जब वे अपने परम आराध्य को इन नामों से पुकारते हैं, तो उनका मतलब अवतारों से नही होता। डॉ0 हजारीप्रसाद द्विवेदी के शब्दों में, "उनका अल्लाह अलख निरंजन, देव है। जो सेवा से परे है, उनका विष्णु वह है जो संसार रूप में विस्तृत है। उनका कृष्ण वह है जिसने संसार का निर्माण किया है। उनका गोविन्द है जिसने ब्रह्माण्ड को धारण किया है। उनका राम वह है जो सनातन तत्त्व है उनका खुदा वह है जो दस दरवाजों को खोल देता है। रब्ब वह है जो चौरासी लाख योनियों का परवरदिगार है। करीम वह है जो इतना सक कर रहा है। गोरख वह है जो ज्ञान से गम्य है। महादेव वह है जो मन को जानता है।

सिद्ध वह है जो इस चराचर जगत् का साधक है......।।" वही कबीर का राम है। यही उनका भगवान है। यह राम निरंजन है।

"अब कछु रामं नाम अविनाशी। हरि तजि जियरा कतहुं न जासी।

जहाँ जाहु तहाँ होहु पतंगा। अब जनि जरहु समुझि विष संगा।।

राम–नाम लौ लाय सुलीन्हा। भिंगी कीट समुझि मन दीन्हा।।

भव अति गरुआ दुखकरि भारी। करि जिय जतन जु देखु बिचारी

मन की बात है लहरि बिकारा। तुहिं नहिं सूझै वार न पारा

साखी–इच्छा के भव–सागरैं, बोहित राम आधार।

क्हे कबीर हरि–सरन गहु, गोबछ–खुर विस्तार।"

## 2. सगुण से निर्गुण की ओर प्रस्थान

प्रारम्भ में कबीरदास जी ने सगुण राम का अवतार रूप में कुछेक स्थलों पर वर्णन किया है, परन्तु आगे चलकर कबीरदास जी सगुण साकार राम के स्थान पर निरगुण निराकार राम का ही समर्थन करते हैं। वे कहते हैं–

"दशरथ सुत तिहुं लोक बखाना

राम नाम का परम है आना।"

यूँ तो कबीरदास ने ध्रुव भक्त तथा प्रह्ाद भक्त आदि यूँ तो कबीरदास ने उदाहरण देकर भगवान से भक्ति की याचना की है। यही नहीं उन्होंने हरि, गोविन्द, नारायण, सारंग केशव राम आदि अवतारवाद के समर्थक नामों का भी प्रचुर मात्रा में प्रयोग किया है; परन्तु धीरे–धीरे का भी प्रचुर मात्रा में प्रयोग किया है; परन्तु धीरे–धीरे ज्ञान बुद्धि के साथ–साथ कबीर को यह बोध हुआ कि यह अवतारी राम तो भ्रम में डालने वाला है। कबीरदास ने तत्कालीन हिन्दू समाज को ध्यान से देखा और पाया कि वे लोग असंख्य रूढ़ियों, आडम्बरों और अन्धविश्वासों के शिकार बने हुए हैं। उन्होंन अनुभव किया कि दाशरथि राम को लोगों ने बड़ा संकुचित बना दिया है। उनके दरबार में निम्न जाजि के लोगों को प्रवेश नहीं दिया जाता। इस प्रकार के राम एक ही मिट्टी पानी से बने और एक ही प्रभु की सन्तान मुसलमानों के लिए भी नही है। कबीर ने यह भी देखा कि दाशरथि राम मन्दिर के संकुचित दायरे में प्रस्तर प्रतिमा बन पुजारियों की पेट–पूजा का साधन बनकर रह गए हैं। अतः कबीरदास का अवतारवाद से विश्वास कम होना शुरू हो गया। उनके राम स्वामी रामानन्द को राम से भिन्न हो गए। कबीर का राम शब्द निर्गुण निराकार ब्रह्म का प्रतीक बन गया है। वे कहते भी हैं

"अक्षय पुरुष इक पेड़ है निरंजन बाकी डार

त्रिदेव शाखा भए पात भया संसार।"

यही नहीं, कबीरदास ने निर्गुण राम की भक्ति पर बल दते हुए कहा –

"निुर्गण राम जपहु रे भाई। अविगति की गति लखी न जाई।

चारि वेद जाके सुमृत पुरानां। नौ व्याकरनां परम न जानां।

सेस नाग जाके गरूड़ समानां । चरन–कँवला कँवल नहि जानां।

कहै कबीर जाकै भेंद नाहीं। निज जन बैठे हरि की छांही।।

### 3. निर्गुण राम की उपासना पर बल

कबीरदास की वाणी की सबसे बड़ी उल्लेखनीय विशेषता यह है कि वह साधक को बार–बार न केवल सावधान करते हैं बल्कि उसे याद भी दिलाते हैं कि जो उपासना उसे बताई जा रही है, वह सगुण अवतार की नही है बल्कि वह निर्गुण राम की है ऐसा लगता है कि मानो कबीरदास इस समबन्ध में पुराणवादियों और वेदान्तवादियों से प्रभावित हैं। कदम–कदम पर वे उनका अनुसरण करते हुए दिखाई देते हैं। पुराणों में सगुणवाद के साथ–साथ निर्गुणवाद भी प्रबल है। ये पुराण भी वेदान्तों से प्रभावित हैं। फलतः कबीरदास भी उन्हीं से प्रभवित होकर पूर्णतः निर्गुणवादी दिखाई देते हैं। वे बार–बार यह कहकर –

दशरथ सुत तिहुं लोक बखाना, राम नाम का गरम है आना।

पुराण प्रतिपादित सगुण ब्रह्म का विरोध करना चाहते हैं।

वस्तुतः कबीरदास के राम पुराण प्रतिपादित अवतार नहीं थे। वे न तो दशरथ के घर जन्में थे और न ही उन्होंने लंका के राजा का नाश किया, न वे देवकी की कोख से पैदा हुए और न ही यशोदा माता न उन्हें गोद में खिलाया, न ही वह ग्वालों के साथ घूमा करते थे और न ही उन्होंने गोवर्धन पर्वत को उठाया न ही उन्होंने वामन बनकर बलि को धोखा दिया और न ही वराह रूप धारण करके पृथ्वी को अपने दातों पर उठाया। तुलसी का राम तो अधिक अगम्य और अपार है। उसे कहीं दूर खोजने की आवश्यकता नहीं है वह तो सारे शरीर में समाया हुआ है।

ला साहिब के लागों साथा। सुख–दुख मेटि जो रह्यो अनाथा।

नां दशरथ घरि औतरि आवा। नां ल्रका का रांव सतावा।

देवैं करख न औतरि आवा। नां जसवै ले गोद खेलावा

ना वो ग्वालन के संग घिरिया। गोवरधन ले ना कर धरिया।

बांबन होय नहीं बलि छलिया। धरनी वेद ले न अधरिया।

गडंक सालिगराम ना कोला। मच्छ कच्छ डूबै जलहि नाने डोला।

### 4. राम सम्बन्धी शंकर का निवारण

कुछ लोगों का यह कथन है कि कबीरदास कभी तो अद्वैतवाद की और झुकते दिखाई देते हैं और कभी एकेश्वरवाद की ओर। कभी वे पौराणिक सगुण भाव से भगवान को पुकारते हैं तो कभी निर्गुण भाव से। असल में उनका कोई स्थिर तात्विक सिद्धान्त नहीं था। द्विवेदी जी के अनुसार यह विचार उन लोगों के हैं जिनके मन में कबीर के प्रति श्रद्धा का भाव है। ऐसे लोग आरम्भ से ही यह मानकर बैठ गए हैं कि कबीरदास एक अशिक्षित जुलाहे थे और वे अपनी अटपटी वाणियों के द्वारा लोगों पर अपना प्रभाव जमाना चाहते थे। कबीरदास ने स्पष्ट शब्दों में कहा है कि वह ब्रह्म व्यापक है। सबसे एक भाव से व्याप्त है। पंडित हो या योगी, राजा हो या प्रजा, वैद्य हो या रोगी। वह सब में स्वयं रम रहा है और उसमें सब रम रहे हैं। वे स्पष्ट कहते हैं –

"तब निरबैर भया सबहिन थैं काम क्रोध गहि डारा।

व्यापक ब्रह्म सबनि मैं एकै, को पण्डित को जोगीं

रावण–राव कवन सूँ कहिये, कवन वैद को रोगी।

इनमैं आप आप सबहिन मैं आप आपसूँ खेलै।

नाना भाँति पड़े सब भाँडे रूप धरे धरि मैले।

सोचि–विचारी सबै जग देख, निरगुण कोई न बतावै।

कहै कबीर गुणी अरू पण्डित मिली लीला जस गावैं।।"

जब कबीरदास जी निर्गुण राम का स्मरण करते हैं तो उस मतलब यह होता है कि भगवान को सगुण शरीर की जो कल्पना की गई है वह उनको मान्य नहीं है। वस्तुतः वे भगवान को सत्त्व रज और तम तीनों गुणों से परे मानते हैं। वे कहते हैं कि हे सन्तों मैं धोखे की बात किससे कहूँ क्योंकि गुण में ही निर्गुण है और निर्गुण में गुण है। इस सीधे रास्ते को छोड़कर आदमी कहाँ भटकता फिरे। लोग उसे अजर, अमर कहते हैं लेकिन असली बात कोई नहीं कहता। वे तो वस्तुतः अलख और अगम्य हैं। कबीरदास जी कहते हैं –

"सन्तों धोखा कांसू कहिये।

गुण मैं निरगुन निरगुन मैं गुन बाट छांडि क्यूँ बहियै।

अजर–अमर कथै सब कोई अलख न कथना जाई।

नाति–स्वरूप–बरण नहिं जाके धरि–धरि रहैयौ समाई।।

प्यंड–ब्रह्मांड कथै सब कोई काकै आदि अरू अन्त न होई।

प्यंड–ब्रह्मंड छाँडि जे कहियै कहै कबीर हरि सोई।।

### 5. सहज रूप में राम की प्राप्ति

कबीरदास जी ने 'सहज' की चर्चा करते हुए भी अपने राम पर प्रकाश डाला है। वे सहज भाव से एकमेक होकर राम से मिल जाते हैं। उनका यह मिलना अद्वैतवादियों के समान नहीं है। यह चिदात्मक ब्रह्म–सत्ता में चौतन्य का विलय नहीं है। बल्कि परम प्रेमाश्रय भगवान से सहज रूप में मिलना है। यह वस्तुतः कबीर की सहजानुभूति का ही परिणाम है। हम निश्चय से यह नहीं कह सकते कि कबीर ने अद्वैतवादियों से प्रभावित होकर ऐसा कहा है।

सहज की चर्चा करते हुए वे कहते हैं

सहजै सहजै सब गये सुत–बित–कामिणी–कांम।

एकमेक है मिलि रह्या हासि कबीरा राम ।।

सहज–सहज सब कोई कहै, सहज न चीन्हे कोई। ..

जिन्ह सहजै हरि जी मिलै, सहज कहीजे सोई।।

यह सब कहने के बाद भी कबीरदास जी अपने प्रभु का अता–पता नहीं बता सकते। उसे न तो भीतर कह सकते हैं न बाहर । अगर उसके बारे में कुछ भी कहा जाये तो भीतर रहने वाला सद्गुरु रूप में वह लज्जित हो जाएगा। जिस पूर्ण संसार को हम देखते हैं और पहचानते हैं वह (परब्रह्म) स्वयं बैठा हुआ हमें दिखा रहा है। उसी से प्रेरणा लेकर हम पहचान पाते हैं

ऐस लो तत ऐसा लो, मैं केहि विधि कहाँ गभीरा लो।

बाहर कहीं तो सत गुरु लाजै, भीतर कहाँ तो झूठा लो।

बाहर भीतर सकल निरन्तर गुरु परतापै दीठ लो।

दृष्टि न मुष्टि न अगम अगोचर पुस्तक लिखा न जाई लो।

जिन पहिचाना तिनामल जाना कभहै न को पति पाई लो।.....

## 6. अगम, अगोचर राम–

वस्तुतः कबीर की दृष्टि में वह अगम अगोचर है। जिन्होंने उसे पहचाना है वही उसे भली प्रकार से जानते हैं। किसी के कहने या बताने से कोई भी उस पर विश्वास नहीं करता। वह तो स्वयं–संवेद्य है। उसे अन्दर ही अन्दर अनुभव करना होता है। डॉ० हजारी प्रसाद द्विवेदी के ही शब्दों में..."ईश्वर यदि केवल सत्य–स्वरूप होते, केवल अव्यर्थ नियमों के रूप में ही उनका प्रकाश होता तो उनके निकट प्रार्थना करने की बात हमारे मन में स्वप्न में भी नहीं आती। परन्तु कहा गया है वे आनंद रूप अमृत हैं, कहा गया है वे इच्छामय, प्रेममय, आनंदमय हैं, इसलिए सिर्फ विज्ञान के द्वारा हम उन्हें नहीं जानते, इच्छा के द्वारा ही इच्छा–स्वरूप और आनन्द स्वरूप को जानना पड़ता है।"

कबीरदास ने इसी त्रिगणातीत, द्वैताद्वैत विलक्षण, अलख, अगोचर, अगम्य, प्रेम पारावार भगवान को निर्माण राम कहा है

बाबा अगम अगोचार कैसा, ताते कहि समुझावौ ऐसा।<br>
जो दीसे सो तो है वो नाही, है सो कहा न जाई।<br>
सैना–बैना कहि समुझाओं गूंगे का गुड़ भाई।<br>
दृष्टि न दीसै मुष्टि न आवै विन सै नाहि नियारा।<br>
ऐसा ग्यान कथा गुरु मेरे पंडित करो विचारा।।

अतः उपयुक्त विवेचन से स्पष्ट होता है कि भले ही कबीरदास ने निर्गुण राम का प्रतिपादन किया हो. लेकिन वे भी उसका कोई निश्चित रूप निर्धारित नहीं कर सके। कहीं न कहीं उनके मन में सगुण राम की उपस्थिति अवश्य रही होगी। फिर भी युगानुरूप उन्होंने इस प्रकार के अद्वैतवादी दृष्टिकोण की स्थापना करने का प्रयास किया जो हिन्दू तथा मुसलमान दोनों सम्प्रदायों के लोगों को स्वीकार्य हो। साथ ही वह शासक जाति के विरोध का विषय भी न बन सके, क्योंकि उस समय वे शासक अपनी धार्मिक कट्टरता और राजनीतिक शक्ति के कारण हिन्दू सिद्धान्तों को ग्रहण न कर सकते थे। दूसरी ओर हिन्दू अपनी सहनशीलता के बावजूद अपने प्राचीन गौरव के कारण मुहम्मद साहब को ईश्वर का पुत्र नहीं मान सकते थे। अतः कबीर ने राम रहीम दोनों को मन्दिर तथा मस्जिद के प्रांगणों से बाहर निकालकर घट–घट व्यापी निराकार ब्रह्म के रूप में स्थापित किया। कबीर का यह निर्गुण ईश्वर (राम) मुसलमानों और हिन्दुओं के लिए एक समान बन गया। कबीर का उद्देश्य तो आडम्बररहित तथा तत्कालीन दोनों धर्म के लिए ग्राह्य ब्रह्म का निरूपण करना था। वे सम्भवतः सर्ववाद, एकेश्वरवाद, ब्रह्मवाद आदि की बारीकियों को नहीं जानते थे। फिर भी इन तीनों वादों का सार तत्त्व उनके परब्रह्म में समाहित हो गया। वे एक ऐसे ब्रह्म का निरूपण करने में सफल हुए जो दोनों धर्मों के अनुयायियों के लिए ग्राह्य हो सका। इसलिए कबीर का राम न केवल हिन्दुओं का राम है और न मुसलमानों का इसीलिए तो वे राम, रहीम, अल्लाह आदि शब्दों का खुलकर प्रयोग करते हैं।

वे कहते हैं–

अल्लह राम जिऊं तेरे नाई।<br>
बदे ऊपुरि मिहरि, करौ रेरे साई।। टेक।।<br>
क्या ले मूंडी भुइं सौ मारे क्या जाल देह।<br>
खून करै मिसकीन कहावै गुनही रहे न्हवाएं छिपाएं।

# 5. कबीर की प्रासंगिकता

कबीर की पहचान असली है क्या? उन्हें सन्त कहें, समाज सुधारक कहें, हिन्दू–मुसलमान की एकता के लिए निरन्तर प्रयत्नशील सज्जन कहें या उन्हें चिंतक कहेंगे? उनकी यह पहचान भी अधूरी है। उनकी पहचान के लिए जितने भी विशेषण है, कम हैं। मध्ययुग के इस मस्तमौली और फक्कड़ संत कबीर ने धर्म, राजनीति और समाज आदि विभिन्न एवं विविध क्षेत्रों में सभी जागरूक व्यक्ति के लिए एक पूर्वभूमिका प्रस्तुत कर दी थी। वर्तमान युग में जागरूक व्यक्ति आज जिस भावनात्मक ऐक्य, मानवाधिकार एवं उनकी सुरक्षा की महत्ता एवं आवश्यकता महसूस करते है, कबीर ने अपनी सरलतम भाषा में इन सबकी अभिव्यक्ति की है।

कबीरवाणी में आधुनिक युग की ही नहीं किंतु युग–युग की प्रासंगिकता समाहित है कबीर ने अपनी अनुभव वाणी के द्वारा मानव की मानसिकता एवं अन्तःद्वंद्व को प्रस्तुत किया है। कृष्णदेव वर्मा के शब्दों में, "कबीर के सभी प्रकार के दर्शन और साधना के साथ–साथ काव्यत्व आधारशिला भी अनेकत्व में एकत्व की स्थापना और साधना है। दार्शनिक पारिभाषिक शब्दावली में इसी को अद्धैतवादी कहा गया है बल्कि यों कहना चाहिए कि अद्वैतवादी घट–घट में, प्रत्येक वाणी एवं पदार्थ में एक ही परमतत्त्व या सत्ता के दर्शन पाता है।

आज सामान्य व्यक्ति भी कबीर की वाणी से परिचित है। बात–बात में कबीर के पदों के उदाहरण दिये जाते है। इसी को कबीर की प्रांसगिकता माना जाएगा।

कबीरदास एक युगद्रष्टा एवं क्रांतिकारी विचारक थे। आधुनिक युग में उनकी प्रासंगिकता विशेष महत्व रखती है। इस संदर्भ में हमें इस बात का ध्यान रखना होगा कि धर्म, साहित्य, सभ्यता और संस्कृति आदि के लिए परिष्कार में सत्ता प्रतिष्ठानों का बहुत बड़ा योगदान रहा है। प्रत्यक्षतः या परोक्षतः सत्ता प्रतिष्ठान इन्हें न केवल प्रभावित करते हैं अपितु इन पर नियंत्रण भी करते रहे हैं। इसके बावजूद भी धर्म कला और साहित्य का मूल स्त्रोत प्रजा ही रही है। जनसाधारण की अवहेलना करके न तो कोई राजा महान बन पाया है न ही कोई कवि या साहित्यकार। दुनिया में जो कोई सुंदर, महान और शक्तिशाली होता है वह सब मानव संस्कृति का ही अंग है। इस संस्कृति को मानव जाति ने अपने परिश्रम से निर्मित किया है। फिर भी धर्म, साहित्य और संस्कृति का उपयोग समाज के पूंजीपति वर्ग के हित में ही हुआ है।

भारत के मध्य युग में मुसलमानों के आक्रमणों के साथ हमारे धर्म में इस्लाम धर्म का प्रचार–प्रसार बढ़ने लगता था। सत्ताधारी वर्ग का आश्रय पाकर इस्लाम धर्म न केवल अपनी जड़ों को मजबूत कर रहा था बल्कि वह हिंदुओं को मुसलमान भी बना रहा था. उस काल में वे सभी आंदोलनकारी सत्ताधारी वर्ग के कोप भाजन बने जो पद्दलित जन साधारण की आशा का प्रतिनिधित्व कर रहे थे परंतु जब इन आंदोलनों ने एक शक्ति का रूप धारण कर लिया तो सत्ता वर्ग भी इनके साथ लग गया। बौद्ध, इस्लाम और ईसाई धर्मों के साथ ऐसा ही हुआ।

**उत्तर भारत में भक्ति आंदोलन का प्रार्दुभाव :**

उत्तर भारत में भक्ति आंदोलन एक विशेष उपलब्धि है इसके कारण निर्गुण और सगुण द्वंद का श्रीगणेश हुआ। कबीरदास निर्गुण भक्ति आंदोलन के प्रवर्तक कहे जा सकते हैं। यही नहीं, वे शोषित, पीड़ित तथा उपेक्षित निम्न

जातियों के प्रतिनिधि भी थे। भक्तिकाल में निर्गुण और सगुण का संघर्ष काफी समय तक चला। जहां कबीरदास ने निर्गुण निराकार की भक्ति पर बल दिया। वहां गोस्वामी तुलसीदास ने सगुण, साकार तथा अवतारवाद का समर्थन किया। इस संदर्भ में यदि गहराई से देखा जाए तो उनकी प्रासंगिकता और अधिक बढ़ जाएगी। कबीर आफर तुलसी की प्रासंगिकता पर कबीर की प्रासंगिकता आज भी बनी हुई है। बल्कि आने वाले काल में विचार करने पर हमारे समक्ष प्रश्न उपस्थित होते हैं आज के समाज को देखते हुए क्या दोनों का साहित्य उपयोगी कहा जा सकता है और इन दोनों में कौन सी सामाजिक वास्तविकताएं हैं अथवा समाज के विकास क्रम में इन दोनों का योगदान क्या है? पहली बात तो यह है कि कबीर साहित्य में तत्कालीन निम्न जाति की पीड़ा और व्यथा को उभारा गया है परंतु तुलसी साहित्य में सुधारवादी दृष्टिकोण को अपनाने के बावजूद वर्णाश्रम धर्ण का समर्थन किया गया है। तुलसीदास तत्कालीन सामाजिक दुर्दशा का कारण कुलीन शासक वर्ग को तो मानते थे। परंतु गरीब शोषित और निम्न आदि वर्ग की और उनका ध्यान नही गया। समाज धर्म–राजनीति आदि क्षेत्रों में फैली अराजकता का उन्होंने यथार्थ वर्णन किया है। इस दृष्टि से वे सच्चे महात्मा कवि हैं लेकिन इस अराजकता से मुक्ति पाने के लिए वे शास्त्र सम्मत वर्णाश्रम धर्म की स्थापना करते हैं परंतु कबीरदास न केवल वर्णाश्रम धर्म का विरोध करते हैं बल्कि उससे उत्पन्न सामाजिक विकृतियों से भी जनता को मुक्त करना चाहते हैं। कबीरदास जी ने ब्राह्मण काजी आदि को उनके कर्तव्य के प्रति सचेत करते हुए कहा–

"सो हिंदू सो मुसलमान जा का धर्म रहे इमान।

सो ब्राह्मण जो कहे ब्रह्मज्ञानि काजी सो जो जाने रहिमा।।

## कबीर द्वारा सामाजिक विकृतियों का उदघाटन

कबीरदास ने वर्ण व्यवस्था का विरोध करते हुए जाति–पाँति, छूआछूत तथा ऊँच–नीच की भावना का न केवल निषेध किया बल्कि मानव मात्र की समानता का संदेश भी दिया। मूर्ति–पूजा, यज्ञ, हवन, रोजा, मंदिर, मस्जिद, तीर्थ आदि के कारण जो सामाजिक विकृतियां पैदा हो गई थीं–कबीर ने उनका जोरदार खंडन किया। आज के सांप्रदायिक तनाव के विरुद्ध सांप्रदायिक सदभावना को देखते हुए कबीर का साहित्य अत्याधिक प्रासंगिक है। सत्य तो यह है कि आज छुआछूत, हिंदू–मुस्लिम विवाद, हिंदू सिख भेद आदि इतना भयंकर रूप धारण कर चुके हैं जिसके कारण देश की लोकतंत्रीय व्यवस्था खतरे में पड़ गई है साम्प्रदायिक तनाव के कारण हमारे देश का सामाजिक व धार्मिक विकास अवरुद्ध हो गया है। देस की एकता खतरे में है। आज की परिस्थितियों में कबीर काव्य का संदेश और भी महत्वपूर्ण है। स्वाधीनता प्राप्ति के बाद हमारे नेताओं ने लोकतंत्रीय शास पद्धति की स्थापना की। साथ ही धर्म निरपेक्ष राष्ट्र का वादा भी किया। नेहरू आदि नेताओं ने लिंग, जाति, धर्म, वर्ण के आश्वासन भी दिए परंतु इन सबका परिणाम वही ढाक के तीन पात हैं। आज राजनैतिक दल धर्म का सहारा लेकर अपनी रोटियां सेंकने में लगे हुए हैं। परंतु कबीरदास ने वैज्ञानिक दृष्टिकोण अपनाते हुए एकेश्वरवाद धर्म की स्थापना की। कबीरदास ने हिन्दुओं और मुसलमानों दोनों को फटकारते हुए कहा–

जे तूं बाभनि जाया, आन वाट है क्यों नहिं आया।

जे तू तूं तुरक तरकनी जाया, तौ भीतरि खतना क्यों न कराया।।

आचार्य हजारी प्रसाद के शब्दों में– "जो लोग हिंदू–मुसलिम एकता के व्रत में दीक्षित हैं। वे भी कबीरदास को अपना मार्गदर्शक मानते हैं। यह उचित भी है। राम–रहीम और केशव–करीम की जो एकता स्वयं सिद्ध है उसे भी बुद्धि से विकृत मस्तिष्क वाले लोग नहीं समझ पाते। कबीरदास से अधिक जोरदार शब्दों में एकता का प्रतिपादन किसी ने नहीं किया। पर जो लोग उत्साहधिक्य वश कबीर को केवल हिंदू–मुस्लिम एकता का पैगंबर मान लेते हैं वे उनके मूल स्वरूप को भूलकर उसके एक देशमात्र की बात करने लगते हैं। ऐसे लोग यदि यह देखकर क्षुब्ध हैं कि

कबीरदास ने दोनों धर्मों को ऊंची संस्कृति .या दोनों धर्मों के उच्चतर भावों में सामंजस्य स्थापित करने की कहीं भी कोशिश नहीं की और सिर्फ यही नहीं, बल्कि उन सभी धर्मगत विशेषताओं की खिल्ली उड़ाई है। जिसे मजहबी नेता बहुत श्रेष्ठ धर्माचार कहकर व्याख्या करते हैं।

## प्रगतिवादी चेतना और वर्तमान स्थिति

आज हमारा देश स्पष्ट रूप से तीन वर्गों में बंट चुका है। पहला पूंजीपति वर्ग है जो शोषण की प्रक्रिया द्वारा अमीर होता जा रहा है। उसके पास न केवल जीवन की सभी सुख–सुविधाएँ हैं बल्कि सत्ता वर्ग भी उसी के हाथ बिका हुआ है। दूसरा वर्ग मध्य वर्ग है। यह द्वंद्वग्रस्त होने के कारण द्विग्भ्रांत हो चका है। तीसरा वर्ग निम्न वर्ग है जो दो वक्त की रोटी जुटाने में भी स्वयं को असमर्थ महसूस कर रहा है। संक्षेप में हम कह सकते हैं कि आज का युग शोषक और शोषित दो वर्गों में बंटा हुआ है। कबीर युगीन सामंती समाज भी दो वर्गों में विभक्त था। एक तरफ तो सामन्ती वर्ग था जो सखद जीवन व्यतीत कर रहा था, दूसरी ओर किसान, मजदूर और उनसे जुड़े कारीगरों का निम्न जातियों का विशाल वर्ग था। पहला वर्ग मात्र उपभोक्ता था और दूसरा वर्ग उत्पादन से जुड़ा हुआ था। यहां विचारणीय बात यह है कि निर्गुण काव्य–धारा के सभी कवि कबीरदास, रविदास, दादू, सेन, पीपा, दरिया, धन्ना आदि कवि होने के साथ–साथ गृहस्थ भी थे। वे बुनकर, मोची, नाई, दर्जी, धुनिया आदि छोटे–मोटे व्यवसाय से जुड़े लोग थे परंतु उस समय के सगुण भक्त गृहस्थ जीवन को त्याग कर भक्ति के क्षेत्र में आये थे। यही कारण है कि कबीरदास ने न केवल तत्कालीन सामंती समाज में भौतिक मल विरोध किया बल्कि शोषित और पददलित निम्न वर्गीय जनसमूह को सामाजिक प्रगति का आधार प्रदान किया। इस दृष्टि से कबीरदास पूर्णतया प्रगतिवादी कवि थे। कबीरदास ने अपने युग की जन विरोधी सामाजिक विसंगतियों पर करारी चोट की। उन्होंने वर्णाश्रम धर्म को अस्वीकार किया क्योंकि इसी के कारण सामाजिक कुरीतियों, धार्मिक पाखंडों जातिवाद, छुआछूत, ऊंच–नीच आदि भावनाओं को ठोस आधार मिल रहा था। कबीर के समय भी समाज का एक बहुत बड़ा वर्ग राजनैतिक, सामाजिक, आर्थिक और सांस्कृतिक दृष्टि से पिछड़ चुका था। लगभग आज भी यही स्थिति है। आज देश की चालीस प्रतिशत जनता गरीबी के स्तर आज देश का विशाल जनसमह अभावग्रस्त जीवन जीने के लिए मजबूर है। छुआछूत की भावना आज भी हमारे लिए चुनौती बनी हुई है। इस संदर्भ में कबीरदास ने कहा भी था–

काहे को कीजै पाण्डे छोति विचारा। छोतिहि ते उपजा संसारा।

हमारे कैसे लोहू तुम्हारे कैसे दूध। तुम कैसे बाभन पाण्डे हम कैसे शूद्र।

छोति छोति करता तुमही जाए। तो गर्भवास काहे को आए।

कबीरदास जी साफ–साफ पूछते हैं कि हे ब्राह्मण! तू छूत–अछूत की बात क्यों करता है? छूत से ही यह संसार पैदा हुआ है। दो के संयोग से ही यह सृष्टि बनी है। सबमें वही खून बह रहा है। फिर हमारा शरीर खून से तुम्हारा शरीर दूध से कैसे बन गया। तुम कैसे ब्राह्मण बन गए, हम कैसे शूद्र हो गए। इस प्रकार कबीरदास ने अपनी तर्क संगत कथनों के द्वारा शास्त्र, कुरान और ब्राह्मणवाद का विरोध किया। उन्होंने कर्मकांडों की निंदा की। संध्या, गायत्री, व्रत, तीर्थ, छापा, तिलक, पूजा अर्चना आदि को व्यर्थ बताया।

## मानवतावादी धर्म की आवश्यकता

हिंदू धर्म के पाखंडों के साथ–साथ कबीर ने मुसलमानों के बाह्य आडंबरों पर भी जमकर प्रहार किया। कबीर दास ने उस समय के हिंदू–मुस्लिम वैमनस्य की निंदा की। जो रोजा–नमाज, हज आदि बाहरी क्रिया–कांडों के द्वारा फैलाई जा रही थी। कबीरदास ने धार्मिक और सामाजिक विसंगतियों पर प्रहार किया और मानव एकता का संदेश दिया। इसमें दो मत नहीं है कि तत्कालीन शासक हिंदुओं के प्रति भेदभाव की नीति अपना रहे थे बल्कि उन पर तरह–तरह के अत्याचार भी कर रहे थे। कबीरदास ने हिंदू व मुसलमान दोनों के लिए अपनी साखियों, सबदों,

रमैणियों के द्वारा मानवतावादी धर्म का प्रचार किया। उनका मार्ग निर्गुण निरंकार की उपासना का मार्ग था जो दीन–हीन जनता के लिए ग्राह्य था। उन्होंने सभी दलित और अछूत जातियों के लिए भक्ति के द्वार खोल दिए। यह कबीरदास की महान उपलब्धि थी। यही नहीं उन्होंने काजी, मुल्ला, पंडित, पुरोहित को फटकारते हुए राम–रहीम की एकता के संदेश दिया। आज भी इसी एकता की आवश्यकता है।

क्या उजूँ जप–संजम कीएँ क्या मसीति सिरू नाएं।
दिल महिं कपट निमाज गुजारें क्या हज काबै जाएं।
बाह्मन ग्यारसि करै चौबीसो काजी मोह रमजाना।
ग्यारह मास कहां क्यूं खाली एकहि मास नियाना।।
जौ रे खुदाइ मसीति बसतु है और मुलुक किस केरा।
तीरथ मूरति राम निवासी दह महिं किनहुं न हेरा ।।
पूरब दिशा हरिहि कर बासा पाच्छिम अलह मुकामां।
दिल मेहि खोज दिलै खोजह इहई रहीमां–रामां।।

आज हमारा देश साम्प्रदायिक विष से ग्रस्त हो चका है। विदेशी शक्तियां हमें कमजोर बनाने पर तुली हुई हैं। साम्प्रदायिक उग्रवाद धीरे–धीरे सारे देश के वातावरण को विषाक्त बनाता जा रहा है। राजनीतिक दल इसी सांप्रदायिकता का आश्रय लेकर वोटों की राजनीति का खेल खेल रहे हैं। इस समय राजनेताओं तथा धर्मनेताओं की आवश्यकता नहीं, अपितु समाज नेताओं एवं समाज सुधारकों की आवश्यकता है। कबीर की वाणी आज भी हमारा मार्गदर्शन कर सकती है। आवश्यकता इस बात की है कबीर साहित्य का आधुनिक परिप्रेक्ष्य में अनुशीलन किया जाए। भले ही उनकी वाणी कुछ स्थलों पर कर्कश एवं कठोर बन गई है, लेकिन खरी–खोटी सुनाए बिना सामाजिक विसंगतियों को दूर भी तो नहीं किया जा सकता। रोग जितना भयंकर होगा, उसके उपचार हेतु कड़वी औषधि ही उपयोगी होती है। कबीर की वाणी ऐसी ही कड़वी औषधि है जो वर्तमान भारतीय मानस को सही रास्ते पर ला सकती है। भक्त नाभा दास ने उचित ही कहा है– ''कबीरदास मनुष्यता की उस उच्चतम भावभूमि पर आरूढ़ थे, जहां से उन्होंने व्यापक मानवता के पक्ष में वर्णाश्रम और षड्दर्शनों अर्थात तमाम सारी शास्त्रीय मर्यादाओं का उल्लंघन करते हुए भक्ति का एक निष्पक्ष मार्ग प्रस्तुत किया। उन्होंने काजी–मुल्ला और पंडित–पुरोहित दोनों को फटकारते हुए राम–रहीम की एकता के माध्यम से हिंदू–मुसलमान की एकता का संदेश दिया।''

## निर्गुण मत की पराजय और कबीर मत की प्रासंगिकता

कबीर ने अपनी निर्गुण समर्थित भक्ति द्वारा राम–रहीम की एकता का प्रतिपादन किया। उन्होंने मानवीय एकता एवं धार्मिक दृष्टि से समानता का भी संदेश दिया। वे ईश्वर को मंदिर–मस्जिद तथा कर्मकांडों के घेरे से बाहर निकाल कर खुले मैदान में ले आए। उन्होंने निर्गुण भक्ति को निम्न वर्ग के लिए सुलभ बना दिया जिसके फलस्वरूप निम्न जातियों के लोगों में आत्म विश्वास उत्पन्न हुआ। धीरे–धीरे अभिजात्य वर्ग भी इन संत महात्माओं की वाणी के महत्व को स्वीकार करने लगा। परंतु समाज के शोषक वर्ग को यह अच्छा नहीं लगा कि निम्न जाति के संत उनका पथ प्रदर्शन करने वाले धर्म गुरु कहलाए। अतः निर्गुण मत की प्रतिक्रिया में सगुण मत का उदय हुआ। एक लंबे संघर्ष के पश्चात निर्गुण की पराजय हुई और सगुण की विजय। भले ही तुलसीदास निर्गुण–सगुण के समन्वय की बातें करते रहे हो, लेकिन सगुण मत की विजय के पीछे उनका बड़ा भारी योगदान है। भले कबीर मत की भक्तिकाल में ही पराजय हो गई हो लेकिन वह अपने काल के लिए भी प्रासंगिक था और आज भी प्रासंगिक है।

उसकी प्रासंगिकता प्रत्येक युग में रहेगी। कबीर ने ही देश के बहु संख्यक प्रगतिशील जनता को अपने साथ मिलाया। उसने सिद्ध कर दिया कि वास्तविक कष्टों, बाधाओं एवं सामाजिक अवरोधों का सामना करने वाला व्यक्ति ही श्रेष्ठ साहित्य की रचना कर सकता है। उसने यह भी सिद्ध कर दिखाया कि सच्चा साहित्य जन जीवन से जुड़कर उसकी कथा को अभिव्यक्ति प्रदान करता है। उनकी तद्‌युगीन प्रासंगिकता का प्रमाण यही है कि पराजय के बावजूद कबीर का साहित्य आज भी लोगों कि जिह्वा पर विराज मान है ग्रामीण अंचल के लोग आज भी उनकी साखियों को सुनते–सुनाते हैं।

कबीर का रहस्यवाद और उनकी उलटबासियां आज के भौतिकवादी युग में अपनी प्रासंगिकता खो बैठी हैं। लेकिन उनके द्वारा धार्मिक आडंबरों का विरोध आज भी प्रासंगिक है। इसके साथ–साथ वर्णाश्रम व्यवस्था, जाति–पांति, ऊंच–नीच तथा छुआछूत के संबंध में कबीर विरोध आज भी प्रासंगिक हैं। इसी प्रकार से कबीरदास का एकेश्वरवाद आज भी सभी भारतवासियों के लिए प्रासंगिक है।

**सांप्रदायिक एकता का संदेश–**

आज 21वीं शताब्दी का श्रीगणेश हो चुका है। परन्तु हमारे देश के समक्ष असंख्य समस्याएं मुंह बाये खड़ी हैं। हमारी राष्ट्रीय एकता के लिए यदा–कदा खतरे उत्पन्न होते रहते हैं। पश्चिमी देशों के बढ़ते प्रभाव ने हमारी संस्कृति का अस्तित्व ही खतरे में डाल दिया है। इस धर्म–निरपेक्ष देश में सभी धर्मों के अनुयायियों को एक साथ रहना है। लेकिन मंदिर–मस्जिद विवाद ने हमारे देश की शांति को भंग कर दिया है। सांप्रदायिक कट्टरता ने एक बार फिर से हमारे लिए चुनौती खड़ी कर दी है। कबीर की वाणी आज भी हमें चेतावनी देती है––

अरे इन दोउन राह न पाई।
हिंदू अपनी करे बड़ाई गागर छुवन न देई।
वेस्या के पाइनत्तर सौवै यह देखों हिंदुआई।
मुसलमान के पीर–औलिया मुर्गी मुर्गा खाई।
खाला केटी बेटी ब्याहै घरहि करें सगाई।
हिंदुन की हिंदुवाई देखी तुरकन की तुरकाई।
कहे कबीर सुनो भाई साधो कौन राह है जाई।।

कबीरदास ने ऐसा इसलिए कहा, क्योंकि उन्होंने दोनों संप्रदायों के रास्तों को भली प्रकार से देख लिया था। (अतः कबीर ने काजी और पंडितों द्वारा प्रतिपादित कर्मकांडों का निषेध करते हुए कहा)

संतो राह दुनौ हम दीठा।
हिंदु–तुरुक हटा नहीं मानै स्वाद सबको मीठा।
हिंदू बरत–एकादसि साधे, दूध–सिंधारा सेती।
अन को त्यागें मन को हटके पारन करें संगोती।
हिंदु–तुरक की एक राह है, सतगुरु इहै बताई।
कंहकि कबीर सुनहु हो संतो, राम न कहेउ खुदाई।

आज के मुल्ला और पंडित मंदिर–मस्जिद के अखाड़ों का त्याग कर संसद तथा न्यायालयों की शरण में

पहुंच चुके हैं। बाबरी मस्जिद और राम–जन्मभूमि की समस्या कबीर द्वारा बताए गए मार्ग द्वारा ही सुलझाई जा सकती है। कबीर की वाणी कम–स–कम सांप्रदायिक एकता का पाठ तो पढ़ाती है, साथ ही कठमुल्लाओं और पंडे–पुरोहितों के हथकंडों से भी हमें सावधान करती है। जो लोग देश को सांप्रदायिक आग में झोंकना चाहते हैं उनके लिए भी कबीर साहित्य दिशा–दर्शन देने में समर्थ हैं। कबीर की सर्वाधिक महत्वपूर्ण संदेश था– हिंदू–मुसलिम एकता। यही संदेश आज भी हमारे लिए उपयोगी है।

# 6. कबीर का काव्य रूप

कबीरदास भक्तिकाल के सर्वाधिक प्रमुख निर्गुण सन्तकवि हैं। वे एक सच्चे समाज सुधारक, क्रान्ति युग द्रष्टा, सफल साथक तथा महान् विचारक थे। उनका समस्त साहित्य विचारों की भव्यता एवं गम्भीरता के कारण जन–मन के हृदय को छू लेता है। भले ही वे अशिक्षित रहे हों, लेकिन उनका काव्यरूप अनपढ़ों जैसा लगता नहीं। वे निश्चय बहुश्रुत थे। उन्होंने तत्कालीन जनभाषा में प्रचलित रूपों को चुना और अपने भावों को अभिव्यक्त किया। उन्होंने सांसारिक और आध्यात्मिक समस्याओं का समाधान करने के लिए विभिन्न काव्य रूपों । का आश्रय लिया। उल्लेखनीय बात तो यह है कि उन्होंने तात्विक विचारों को विभिन्न पद्यों के द्वारा बड़ी संगतता से प्रकट कर दिया।

तुम्ह जिन जानों गीत है यहु निज ब्रह्म विचार।

केवल कहि समझाइया, आतम साधन सार।।

कबीरदास ने निश्चित उद्देश्य से ही काव्य रचना की है। वे संसार रूपी सागर में फंसे हुए जीव को अपने उपदेशों के द्वार पार उतारना चाहते हैं, मानो परमात्मा ने कवि को प्रेरणा दी कि वह साखी लिखे।

हरि जी यह विचारिया साखी कहौ कबीर ।

भौ सागर में जीव है जे कोई पकड़े तीर।।

कबीरदास अशिक्षित थे। उन्होंने स्वयं अपनी वाणी को नहीं लिखा। विद्वानों का अनुमान है कि उनके मौखिक उद्देश्यों को शिष्यों ने उनके जीवनकाल या बाद में लिपिबद्ध किया होगा। ऐसा भी हो सकता है कि कुछ रचनाएँ सन्तों और लोक गायकों द्वारा गाई जाती रही हों। कबीरपंथी तो सद्गुरु की वाणियों का कोई अन्त नहीं मानते। उनका कहना है कि संसार के पेड़ों में जितने पत्ते हैं, गंगा में जितने बालूकण हैं, उतनी संख्या में उनकी रचनाएँ हैं।

जेते पत्र वनस्पति औ गंगा की रेन।

पंडित विचारा का कहै, कबीर कही मुख वैन।।

फिर भी विभिन्न विद्वानों ने कबीर की रचना 'बीजक' को ही प्रामाणिक रचना माना है। इसके तीन संग्रह मिलते हैं। उन्हीं के आधार पर हम प्राप्त होने वाले काव्य रूपों का विवेचन करेंगे।

1. **साखी**–साखी शब्द 'साक्षी' से बना है। साक्षिन' इसका अपभ्रंश रूप है। इसका अर्थ है– वह व्यक्ति जिसने कोई घटना अपनी आँखों से देखी हो । आरम्भ में गुरुजनों को ही साक्षी कहा जाता था क्योंकि वे सांसारिक, नैतिक और आध्यात्मिक समस्याओं को जानते थे। बाद में गुरुजनों के वचनों को ही 'साखी' कहा जाने लगा। सिद्ध और नाथ योगियों में अक्सर कहा जाता था कि वे साक्षी देकर सिद्ध कर रहे हैं अर्थात् अमुक वचन पूर्ववर्ती गुरुजन का है। सिद्ध और सन्त यह भी जानते थे कि साधारण आदमी इस दशा को नहीं समझ सकता। अतः उन्होंने अपने गुरु का नाम ही साक्षी रूप में लिया।

साक्षी कबीरदास का उपदेश प्रधान काव्य भी है। नाथ और निर्गुण सम्प्रदाय के सन्तों के नीति, व्यवहार, ज्ञान तथा वैराग्य आदि के लिए जो कुछ कहा गया, उसे साखी कहा। साखियों में सर्वाधिक प्रयोग दोहा–छन्द का है। सन्तों ने अपने नीति प्रधान उपदेशात्मक दोहों को साखी कहा है। कबीरदास भी अपने दोहों को साखी कहते हैं। इस सम्बन्ध में कबीरदास जी कहते भी हैं

हरि जी यहै विचारिया साखी कही कबीर।

भौ सागर में जीव है जे कोई पकड़े तीर।।

साखी रचना की परंपरा का आरंभ गुरु गोरखनाथ के समय से हुआ। उनकी साखी की प्रथम रचना गरु गोरखनाथ की 'जोगेश्वरी साखी' है। संत नामदेव जी की साखी के नाम से एक नामदेव की भी रचना प्राप्त हई है। कबीर पर गोरखनाथ और नामदेव दोनों का प्रभाव पड़ा। इससे यह भी स्पष्ट होता है कि कबीर से पहले साखियों की एक दृढ़ परंपरा रही होगी। यही कारण है कि बाद में सन्तों ने अपने उपदेश प्रधान वरना को साखी काव्य रूप में कहा।

कबीर वाणी में सर्वाधिक संख्या साखियों की है। हंसदास शास्त्री ने जिस कबीर 'बीजक' का संपादन किया है उसमें 353 साखियाँ हैं। 'आदि' ग्रंथ में इनकी संख्या 243 है। लेकिन यहाँ इनको श्लोक कहा गया है। कबीर ग्रंथावली' में 819 साखियाँ हैं। कबीर की साखियाँ निर्गुण, निराकार ईश्वर की साक्षी के साक्षात्कार से उत्पन्न उन्माद, ज्ञान और अनंत की लहरों में डूबी हुई हैं। इन्हें पढ़कर ब्रह्म विद्या की प्राप्ति होती है। लोकानभव पर आधारित ये साखियाँ संसार की असारता, मोह माया की मृग तृष्णा आदि का विवेचन करके पाठक को सही मार्ग बताती हैं । वस्तुतः ये साखियाँ ज्ञान का भंडार हैं। कबीर के सिद्धांतों की जानकारी इनसे प्राप्त हो जाती है।

साखी आँखी ग्यान की समुझि देखु मन माँहि।

बिन साखी संसार का झगरा छूटत नांहि।।

कबीर ग्रंथावली में साखियों का विभाजन विभिन्न अंगों में किया गया है। अंग का अर्थ प्रकरण या भाग लगाया जा सकता है। इनमें दोहे के अतिरिक्त सोरठा, उपमान, मुक्तामणि, अवतार, दौहकीय, वीरता आदि छन्दों का भी प्रयोग है। विषय की दृष्टि से पहले वर्ग की साखियाँ लौकिक और पारलौकिक भाव प्रधान हैं। दूसरे वर्ग की साखियों में सन्त मत का स्वरूप स्पष्ट करने के साथ–साथ पाखण्डों का विरोध किया गया है और लोक व्यवहार पर प्रकाश डाला गया है। साखी में वे सन्त और सन्त मत के बारे में अपने विचार प्रकट करते हुए कहते हैं

निरबैरी निहकामता साई सेती नेह।

विषिया सूं न्यारा रहै संतनि को अंग एह।।

कुछ साखियों में कबीरदास ने परंपरागत रूढ़ियों, अंधविश्वासों, जड़ परंपराओं और बेकार के रीति–रिवाजों का विरोध किया है। वे हिन्दुओं और मुसलमानों दोनों में फैली हुई कुरीतियों पर प्रहार करते हैं। व्यवहार प्रधान साखियों में परनिन्दा, असत्य, वासना, धन, लोभ, क्रोध, छल–कपट आदि का निषेध करके सहिष्णुता, दया, अहिंसा, दान, धैर्य संतोष आदि मीठे वचनों के लिए आग्रह करते हैं; यथा

ऐसी बानी बोलिए मन का आपा खोए।

औरन को सीतल करै आपहु सीतल होय।।

इसी प्रकार से पारलौकिक भाव प्रधान साखियों में उन्होंने आध्यात्मिक विचारों को प्रकट किया है। उस परम शक्ति का साक्षात्कार पाकर वे आनन्दित हो उठते हैं और उसका स्मरण करते हुए विश्व– कल्याण की कामना करते

हैं। ये साखियां भक्ति भाव प्रधान, दर्शन प्रधान तथा रहस्यात्मक हैं। इनमें नैतिक, आध्यात्मिक, सांसारिक, पारलौकिक आदि विभिन्न विषयों का वर्णन किया गया है।

2. **पद (शब्द)**–कबीर के पद गेय हैं। इनको शब्द भी कहा जाता है। इनके लिए 'वाणी' शब्द का प्रयोग किया गया है। इनका प्रायः गायन किया जाता है। सिद्धों के चर्या पदों में कबीर के पदों का स्वरूप देखा जा सकता है। गोरखनाथ की 'शब्दी' तो कबीर के पदों के अत्यधिक समीप है। 'कबीर ग्रंथावली' और 'आदिग्रंथ' में जो कबीर के पद मिलते हैं, उनका विभाजन रागों में है। परन्तु 'कबीर बीजक' के शब्दों का विभाजन रागों के अनुसार नहीं है। 'सबद' शब्द का ही बिगड़ा हुआ रूप है। वेद भी शब्द परक है और वेद का अर्थ है–ज्ञान। नाथ और सन्त साहित्य में भी ज्ञान की ही चर्चा है। सन्त कवि गुरु को ब्रह्म कहते हैं इसलिए गुरु की वाणी को 'सबदी' या 'शब्द' कहा गया है। कबीर बीजक' में पदों को ही शब्द कहा गया है। अन्य शब्दों में पद, वाणी, शब्द तीनों ही पर्यायवाची हैं। कबीर वाणी में यह एक काव्य रूप है। इन पदों को दो भागों में बांटा गया है।

(i) पहले लौकिक भाव प्रधान पदों में जहाँ एक ओर धार्मिक पाखण्डों का खण्डन किया गया है, वहाँ दूसरी ओर उपदेशात्मक और नीतिपरक विचार प्रकट किए गए हैं। इन पदों में कबीरदास ने जातिवाद तथा ऊँच–नीच का खण्डन किया है। बाह्य धार्मिक क्रियाकाण्डों का खण्डन किया साथ ही यह कहा कि हमें वेद और कुरान के वास्तविक ज्ञान को जानने का प्रयास करना चाहिए।

वेद कितेब कहौ मति झूठा।

झूठा जो न विचारै।।

(ii) पारलौकिक विषयों से संबंधित पदों में वैराग्य, सिद्धांत निरूपण, विरह मिलन तथा उलटबांसियों आदि का वर्णन है। इन पदों में जहाँ एक ओर संसार की नश्वरता और सारहीनता का वर्णन है, वहाँ दूसरी ओर प्रभु के नाम स्मरण पर भी बल दिया गया है। सिद्धांत निरूपण संबंधी पदों में साधना और योग की अनेक बातें समाविष्ट हैं। परन्तु विरह और मिलन के पदों में सन्त कबीर की भक्ति की प्रगाढ़ता देखी जा सकती है। यहाँ कवि ने निर्गुण, निराकार ईश्वर के प्रेम को पदों का विषय बनाया है। अविनाशी पुरुष से विवाह होने के बाद उत्पन्न प्रेम और उल्लास का उदाहरण देखिए

दुलहिनि गावहु मंगलाचार।

हम घरि आए हो राजाराम भरतार ।।

इसी प्रकार से विरहानुभूति के भी असंख्य पद देखे जा सकते हैं जिनमें विरहिणी आत्मा अपने प्रियतम को पाना चाहती है।

बालम आउ हमारे गेह रे, तुम बिनु दुखिया देह रे।

सबको कहै तुम्हारी नारी, मोको यही अदेह रे।

एकमेह है सेज न सोवै, तब लगि कैसा नेह रै।

3. **रमैनी**–रमैनी कबीरदास के काव्य का अन्य काव्य रूप है। इसमें चौपाई तथा दोहा छन्दों का प्रयोग है। 'कबीर ग्रंथावली' में रमैनियों को विभिन्न रागों के अनुसार विभक्त करने का प्रयास किया गया है। रमैनी में कबीरदास ने सैद्धांतिक चर्चा की है। इसमें वे परम तत्त्व, रामभक्ति, संसार तथा ब्रह्म के बारे में अपने विचार प्रकट करते हैं। विषय में दृष्टि से रमैनियों के चार भाग हैं– (क) सृष्टि तत्त्व और संसार की उत्पत्ति (ख) परम तत्त्व संबंधी

(ग) राम तत्त्व संबंधी (घ) कर्मकाण्ड संबंधी।

बीजक की रमैनियों में सृष्टि के बारे में जो विचार प्रकट किए गए हैंय वे प्रायः पौराणिक हैं। जीव रूप परमात्मा ने ही अतज्योति को प्रकाशित किया है और उससे इच्छा रूपी नारी को उत्पन्न किया है। इसका नाम गायत्री रखा है। ब्रह्म, विष्णु, महेश इसी के बेटे हैं। इस प्रकार कवि ने छः दर्शन, 96 पाखण्ड, माया आदि की चर्चा करते हुए सिद्ध, साधक, संन्यासी, सुर, नर, मुनि आदि पर भी प्रकाश डाला है। ग्रंथावली की रमैनियों में सृष्टि तत्त्व के बारे में विस्तृत विवेचन किया गया है। परम तत्त्व संबंधी रमैनियों में सर्वव्यापक सकातीत ब्रह्म के बारे में विचार प्रकट किए गए हैं जो कि मन और वाणी के लिए अगम और अगोचर हैं। कबीर जी कहते भी हैं

जस तू तस तोहि कोइ न जान। लोक कहै सब आनहिं आन।

वो है तैसा वोही जाने, ओही आहि आहि नहिं आने।।

कुछ रमैनियों में कबीरदास ने राम तत्त्व की व्याख्या की है और यह कहा है कि उसका राम दशरथ का पुत्र नहीं है और वह अवतारों से परे है।

ना दसरथ घरि औतरि आवा । ना लंका का राव सतावा।

अन्य रमैनियों में उन्होंने हिन्दू–मुसलमानों के कर्मकाण्डों का खण्डन किया है। साथ ही सृष्टि, परमात्मा और संसार संबंधी विचार भी व्यक्त किए हैं।

3. **चौंतीसा**–चौंतीसा नामक काव्य रूप 'कबीर बीजक' में ही मिलता है। इसमें देवनागरी वर्णमाला के स्वरों व क् तथा क्ष, त्र, ज्ञ को छोड़कर अन्य व्यंजनों में रचनाएँ की गई हैं। चौंतीसा में चौपाई छन्दों का प्रयोग है। बीजक में इस काव्य रूप को ज्ञान चौंतीसा भी कहा गया है। क्योंकि इसमें आध्यात्मिक ज्ञान की चर्चा की गई है। विषय की दृष्टि से इन पद्यों में परस्पर कोई संबंध नहीं है। प्रत्येक वर्ण के आधार पर एक स्वतंत्रपण की रचना की गई है।

4. **बावनी**–बावनी कबीर का एक अन्य काव्य रूप है जो कि कबीर गंथावली और आदिग्रंथ में प्राप्त होती है। यं तो नागरी लिपि में भी 52 अक्षर हैं । परन्तु कबीर की 'बावनी' में स्वरों तथा त्र, ज्ञ को छोड़ दिया गया है। यद्यपि यह रचना 34 अक्षरों पर की गई है लेकिन परंपरा से इसे बावनी कहा गया है। बावनी के आरंभिक विपदियों में द्विपदियों का आरंभ नागरी लिपि के 52 वर्गों में से किसी एक से किया गया है। आदि में इसे 'बावन अषरी' कहा गया है तथा इनका संकलन 'रागु गउड़ी' के अन्तर्गत किया गया है। बावनी के प्रमख छन्द दोहा, चौपाई नहीं है।

विषय की दृष्टि से ये आध्यात्मिक रचनाएँ हैं। कबीर के विचारानुसार समूचा संसार 52 अक्षरों और तीन लोकों में समाहित है। लेकिन वह ब्रह्म इन सबसे परे है क्योंकि अक्षर नष्ट हो जाएँगे, पर वह ब्रह्म नहीं। ब्रह्म की विस्तृत चर्चा करने के पश्चात् कवि ने अन्त में संसार की नश्वरता पर प्रकाश डाला है।

5. **विप्रमतीसी**–यह काव्य रूप केवल कबीर बीजक में मिलता है। इसमें ब्राह्मणों के झूठे अभिमान की आलोचना की गई है। इसमें तीस पंक्तियों के बाद अन्त में एक सारणी दी गई है। मूलतः यह 'विप्रमती' अर्थात् ब्राह्मणों की बुद्धि से संबंधित है। कबीरदास ने ब्राह्मणों की इसलिए आलोचना की है क्योंकि वे ब्रह्म ज्ञान रखने के बावजूद इसका आचरण नहीं करते, कबीर के मतानुसार वह ब्रह्म सभी में व्याप्त है । अतः सामाजिक भेदभाव व्यर्थ है।

6. **वार**–आदिग्रंथ में एक रचना वार शीर्षक के अन्तर्गत दी गई है। थोड़े परिवर्तन के साथ यह रचना कबीर ग्रंथावली में भी मिलती है। आदिग्रंथ में यह राग गउड़ी में रचित है और ग्रंथावली में राग 'बिलावल' में। संत कवि काल तत्त्व को भगवान् का कोदण्ड कहते हैं। उसी फल को वे जीवन में उतारना चाहते हैं। अतः जो रचनाएँ तिथियों और दिनों के नाम से लिखी गई हैं, उन्हें वार कहते हैं। 'वार' का अर्थ है– सप्ताह के सात दिन। इनका आरंभ आदित्यवार से किया गया है। यथा

उपादित करै भगति आरम्भ, काया मन्दिर मनसा थम।

इस प्रकार सप्ताह के सातों वारों के नाम को क्रमशः लेकर जो उपदेशात्मक पद्य लिखे गए उनको 'वार' कहा गया है। गोरखवाणी में उन्हें 'सप्तवार' कहा गया है। बुल्लेशाह की 'अठवारा' शीर्षक रचना मिलती है। संत रज्जब और हरिदास ने भी सात वारों के आधार पर उपदेश दिए हैं। सहजोबाई ने भी 'सातं वार निर्णय' नामक रचना लिखी है, जो कुण्डलियां छन्द में है।

7. **थिती**–थिती काव्य रूप का प्रचलन कबीरदास से पहले ही देखा जा सकता है। गोरखनाथ की पंद्रह थिती नामक रचना 'गौरखवाणी' में संकलित है। गुरु नानक देव की थिती नामक रचना आदिग्रंथ में मिल जाती है। श्री परशुराम, सहजोबाई, सूरदास, तुलसीदास आदि ने भी इस काव्य रूप का प्रयोग किया है। आदिग्रंथ में हो कबीर की 'थिती' नाम की रचना प्राप्त होती है। इसका प्रयोग थितीयों के अनुसार किया गया है। 'परवा' से 'पूनिउ' की थितियों में कुछ 46 पंक्तियों में इसकी रचना की गई है और यह राग गउड़ी में है। इसमें आध्यात्मिक विषय को आधार बनाया गया है। कुछ थितियों में उपदेश भी दिए गए हैं।

8. **चांचर**–चांचर शब्द 'चर्चरी' से उत्पन्न है। संस्कृत में चर्चरी शब्द का ही प्रयोग होता है। यही प्राकृत अपभ्रंश आदि भाषाओं में परिवर्तित होकर चर्चरी बन गया है। चर्चरी एक श्रृंगार प्रधान काव्य रूप है। उसे बसन्त ऋतु में नृत्य के साथ गाते थे। कबीर के काव्य में इसका खूब प्रयोग होता है। कबीर ने शृंगारिकता के स्थान पर आध्यात्मिकता के चांचर को विषय बनाया। कबीर बीजक में ही यह काव्य उपलब्ध होता है। आदिग्रंथ में चांचर से मिलता–जुलता सत्तावनवाँ पद प्राप्त होता है ! बीजक के चाचर की आठ पंक्तियों आदि ग्रंथ के इस पद से मिलती–जुलती हैं। यह काव्य रूप कालिदास और बाणभट्ट के काल में प्रयुक्त हो रहा था। जैन साहित्य में भी इसका काफी प्रयोग हुआ।

9. **बसन्त**–कबीर साहित्य का एक अन्य काव्य रूप 'बसन्त' है। बीजक, आदिग्रंथ और कबीर ग्रंथावली तीनों में यह काव्य रूप उपलब्ध होता है। यहां बसन्त ऋतु में फागू, होली आदि पद्य अत्यधिक आनन्द और उल्लास के कारण गाए जाते हैं। कबीरदास ने बसन्त काव्य रूप में उपदेशात्मक प्रवृत्ति को अपनाया है। इसमें कवि ने माया और इसके अनेक भेदों पर प्रकाश डाला है। सन्त साहित्य में इस काव्य रूप का बड़ा प्रचलन हुआ। संत जगजीवन साहब, दरिया साहब, भीखा साहब, गुलाम साहब, चरणदास, सहजोबाई आदि न बसन्त काव्य रूप में रचनाएँ लिखी हैं।

10. **हिंडोला**–हिंडोला काव्य रूप केवल बीजक में मिलता है। इसका संबंध सावन के महीने में महिलाओं के हिंडोला झूलने और गीत गाने से है। कबीर काल में यह एक जन प्रचलित काव्य रूप था। अब कवि ने इसे ज्ञानोपदेश का साधन बनाया। कबीरदास तो सारे संसार को ही हिंडोला मानते हैं। पाप–पुण्य के खम्बे हैं और भ्रम का हिंडोला है। इस रूपक द्वारा कवि ने लोभ, विषय, शुभ–अशुभ कर्म आदि का विवेचन किया है। कवि ने समूची सृष्टि को ही रस हिंडोले पर झूलते हुए दिखाया है।

11. **बेलि**–कबीर बीजक में बेलि के नाम से दो रचनाएं प्राप्त होती हैं। इसकी प्रत्येक पंक्ति के अन्त में 'होरमैया राम' दोहराया गया है। यह छन्द गेय प्रधान है। कवि ने वानमय को उद्यान माना है और वृक्षों को ग्रंथ। संत कबीर की बेलि, उपदेश प्रधान काव्य रूप है। कबीर के बाद दादू, दरिया आदि संतों ने इस काव्य रूप का प्रयोग किया है।

12. **कहरा**–कबीर बीजक में 'कहरा' काव्य रूप के बारह उदाहरण हैं। ये ताल और लय के साथ गाया जाने वाला काव्य है तथा इसमें नृत्य भी किया जाता है। हनुमानदास जी ने इसका अर्थ उपदेश के रूप में लिया है। कुछ विद्वान् कहारों के गीत तथा जन्म–मरण में 'कहरा' का प्रयोग करते हैं। परशुराम चतुर्वेदी के अनुसार संसार के जन्म–मरण रूपी कहर से बचाने वाला कहरा है। इनका गायन लय के अनुसार होता है तथा प्रत्येक पंक्ति के अंत में 'हो', 'गे' या 'हे' आदि शब्दों का प्रयोग होता है। इनमें ज्ञान, वैराग्य तथा आध्यात्मिक बातों को समझाने का प्रयास किया गया है। एक उदाहरण देखिए––

रामनाम भजु रामनाम भजु, चेति देखु मन माहीं हो।

13. **बिरहुली**–कबीर बीजक में 'बिरहुली' नामक काव्य रूप भी प्राप्त होता है। यह तेरह पंक्तियों की रचना है। प्रत्येक पंक्ति के अंत में 'बिरहुली' शब्द का प्रयोग है, इसके अर्थ के बारे में विद्वानों में काफी मतभेद है। हनुमान दास ने इसका अर्थ विराह जीव बताया है। परशुराम चतुर्वेदी इसका अर्थ विरहिणी करते हैं और हजारी प्रसाद द्विधेदी ने 'बिरहुली' साँप का विष उतारने वाला गीत कहा है। 'बिरहुली' शब्द बिरहुला से बना है जिसका अर्थ है–– सर्प । अतः द्विवेदी जी का बताया हुआ अर्थ तर्कसंगत प्रतीत होता है। ऐसा लगता है कि झाड़ फूंक कर विष उतारने वाले ओझा इस काव्य रूप का प्रयोग करते रहे होंगे। गांव में इस प्रकार के गीतों को 'विषहर', 'विषहरी' या 'बिरहुली' कहा जाता है।

14. **उलटबाँसी**–उलटबाँसी काव्य रूप न होकर एक विशिष्ट पद्धति है। इसमें कथ्य को प्रस्तुत करने का एक विशेष ढंग होता है। यह एक बँधी–बँधाई विशेष अभिव्यंजना शैली है। अतः इसे भी काव्यरूप कहा जा सकता है। उलटबाँसियों में आध्यात्मिक बातों का वर्णन लोक–विपरीत पद्धति से किया जाता है। साधकों का कहना है कि परमतत्व को प्राप्त करने के लिए संसार के प्रवाह के प्रतिकूल ही चलना पड़ता है। इसीलिए इस काव्य रूप में मान–मर्यादाओं, विधि–विधानों और प्राकृतिक नियमों के विरुद्ध बात कहनी पड़ती है। इसीलिए तो इसे उलटबाँसी कहा गया है। कबीर से पहले सिद्धों और नाथों ने अपनी अनुभूति एवं सिद्धान्तों को गुप्त रखने के लिए उलटबाँसियों का प्रयोग किया। 'उलटवाँसी' शब्द की व्युत्पत्ति के बारे में अनेक मत हैं। उलटा़बाँस से स्त्रीलिंग शब्द उलटबाँसी माना जाता है। उलट–वास से भी इस की व्युत्पत्ति हो सकती है, क्योंकि अध्यात्म लोक में रहने वाले का निवास भी उलट वास है। उलटवा़ँसी से व्युत्पत्ति हो सकती है जिसका अर्थ होगाउलटी हुई सी। पुनः इस शब्द का सम्बन्ध उलट़वंशी अर्थात् बाँसुरी से भी हो सकता है। कुछ भी हो, कबीरदास की उलटवाँसी एक प्रसिद्ध काव्य रूप है। इसके भेद भी हो सकते हैं। यथा– विरोध पर आश्रित, सादृश्य पर आश्रित, गूढार्थ प्रतीति पर आश्रित आदि। दो एक उदाहरण देखिए

एक अचम्भा देखा रे भाई ठाढ़ा सिंह चरावै गाई।

जल की मछली तरवर व्याई, पकड़ि बिलाई मुरगै खाई।

वैलहि दावि गूनि घरि आई, कुत्ता . लै गई बिलाई।।

और

अम्बर बर से धरती भीजे यह जानें सब कोई।

थरती बरसै अम्बर भीजे, बूझै बिरला कोई।।

अस्तु उपर्यक्त विवेचन से स्पष्ट है कि कबीरदास ने जन–प्रचलित काव्य रूपों का ही अधिकतर प्रयोग किया है। ये काव्यरूप सिद्धों तथा नाथों के काल से प्रयुक्त होते चले आ रहे थे। विचारों और भावों को अभिव्यक्त करने के लिए कबीर ने भी इनका खुलकर प्रयोग किया है। परवर्ती सन्तों और भक्तों ने भी इन काव्य रूपों को अपनाया। बाद में तो इन काव्य रूपों की एक परम्परा ही चल पड़ी। कबीर के बाद सन्त परम्परा में काव्य रूप काफी लोकप्रिय रहे।

# 7. कबीर की उलटबांसियां

भाषा अभिव्यंजना का एक साधन है। जो शब्द भाषा में प्रयुक्त होते हैं वे नाम, रूप, भाव या क्रिया के प्रतीक होते हैं। बहुत से पुराने शब्द और शब्द रूप नये शब्दों और शब्द–रूपों के लिए अपना स्थान रिक्त करके धीरे–धीरे समय की धारा में विलीन एवम् तिरोहित हो जाते हैं। जो शब्द प्रचलित होते हैं वे अपना नियत अर्थ द्योतित करते हैं। एक ही शब्द के अनेक अर्थ भी होते हैं और कभी–कभी यह भी दिखाई पड़ता है कि कई शब्दों का एक ही अर्थ होता है। ये सभी शब्द अपने मौलिक रूप में प्रतीक है और उनका प्रयोग अभिप्रायः विशेष में ही होता है किन्तु जिन शब्दों को साहित्य में प्रतीक नाम से अभिहित किया जाता है उनका उपयोग प्रायः गुण, धर्म, क्रिया अथवा भाव की अभिव्यक्ति के लिए ही किया जाता है भाषा एक प्रतीकात्मक उपायमात्र होते हुए भी प्रतीकों का उपयोग आध्यात्मिक अभिव्यंजना के क्षेत्र में अधिक आवश्यक हो जाता है। वस्तु–जगत् की अभिव्यंजना बड़ी सरल होती है, क्योंकि वस्तुओं के लिए शब्द नियत हैं किन्तु भाव–लोक की अभिव्यक्ति दुरुह होती है, क्योंकि प्रत्येक व्यक्ति अन्तर्लोक को अपने–अपने ढंग से देखता है और अपनी अनुभूति को अपने शब्दों में व्यक्त करने का उपक्रम करता हुआ लोक–भाषा से सम्बन्ध रखकर भी उसके अर्थ को छोड़ देता है। वह अपना अर्थ भाषा को देकर तोष लाभ करता है। भाषा के इतिहास में प्रतीकों का अपना स्थान है, किन्तु यह बतलाना कठिन है कि किस शब्द में प्रतीक शक्ति है। कोई भी शब्द प्रतीक बन सकता है, किन्तु उसकी योग्यता प्रयोक्ता के हाथों में निहित रहती है। प्रतीकों में प्रायः संकेत होते हैं किन्तु उनसे किसी ध्वनि का निकल पड़ना भी असम्भव नहीं है। प्रतीक–परम्परा प्राचीन काल से ही चली आ रही है। कबीर के अनेक विचार उलटबाँसियों में भी अभिव्यक्त हुए है।

कबीर का काव्य अपनी उलटबांसियों के लिए जगत प्रसिद्ध है। उनके नाम से संबद्ध अनेक उलटबांसियां जनसाधारण में प्रचलित हैं। ये उलटबांसियां अक्सर विचित्र बानियों के रूप में रचित है। अतः इनके आशय को शीघ्र समझ पाना बड़ा कठिन है। बल्कि श्रोता इन्हें सुनकर आश्चर्यचकित रह जाता है। परंतु गंभीर अध्ययन करने के पश्चात जब वह इनके रहस्य को जान लेता है तब उसे असीम आनंद की प्राप्ति होती है। कबीरदास के साहित्य में ऐसी अनेक उलटबांसियां मिलती हैं। लेकिन वे अन्य कहीं भी उलटबांसियों का नाम नहीं लेते। कभी–कभी वे उलटबांसियों में निहित विद्यमान रहस्य की ओर केवल यह कह देते हैं–

'बूझो अकथ कहानी'

अथवा

'एक अचम्भा देखा रे भाई'

अथवा

'अकथ कहानी प्रेम की कछु कहा न जाई।''

कबीरदास की ऐसी बानियां अधिकतर फुटकर पदों के रूप में प्राप्त हैं। न तो उनका कोई शीर्षक है और न ही सही प्रकार से वर्गीकरण किया गया है। अतः इनको किसी प्रसंग के सहारे नहीं समझा जा सकता।

## उलटबांसी शब्द की व्युत्पत्ति :–

उलटबांसी शब्द की व्युत्पत्ति का भी ठीक से पता नहीं चलता। प्रायः इस शब्द का अर्थ 'उलटा' मान लिया गया है। उलटबांसी के दो अर्थ स्वीकार किए गए हैं। पहला अर्थ वास्तव में प्रकट है, उससे उलटा अर्थ लगाना। दूसरा जो प्रतिपाद्य का वास्तविक अर्थ है उससे उलटा समझना। परशुराम चतुर्वेदी ने उलटबांसी शब्द का दो प्रकार से अर्थ किया है–

1. एक स्थान पर उन्होंने उलटा तथा अंश शब्द की संधि मानी है।

2. दूसरी व्याख्या करते हुए कहते हैं कि उलटबांसीं का अर्थ उलटा तथा बांस द्वारा निर्मित मान लिया जाता है। जिस दिशा में उनका ठीक–ठीक शब्दार्थ वैसी रचना के अनुसार होगा जिसका बांस उलटा या विपरीत ढंग से पाया जाए। परंतु चतुर्वेदी जी भी उलटबांसी की परिभाषा सही प्रकार से नहीं दे पाए। इस संदर्भ में डॉ. सरनाम सिंह का कथन अत्यधिक महत्वपूर्ण है। वे कहते हैं– "मेरी समझ में इस शब्द की दो व्युत्पत्तियां हो सकती हैं– एक तो उलटबांसी संयुक्त शब्द से और दूसरी उलटवां से संबंधित। पहले शब्द उलटा का अर्थ उलटी हुई है और सी का अर्थ समान है, अतएव उलटबांसी का अभिप्राय हुआ–उलटी हुई प्रतीत होने वाली उक्ति। उलटबांसियों में उलटी बातें कही गई हैं, इसलिए यह उचित भी प्रतीत होती है। गोरखनाथ का 'उलटी चर्चा' और कबीर का 'उलटावेद आदि के प्रयोग भी इस अर्थ का समर्थन करते हैं।"

दूसरी व्युत्पत्ति विशेष रूप से विचारणीय है। यह व्युत्पत्ति उलटबांस से संबंधित है। परमपद या आध्यात्मिक लोक में रहने वाला निवास स्थान उलटबांस है। इससे संबंधित वाणी उलटबांसी वाणी कहला सकती है। आध्यात्मिक अनुभूतियों लोक विपरीत अनुभूतियां होती हैं और उन्हें व्यक्त करने वाली वाणी लोक दृष्टि से उल्टी प्रतीत होती है। वास्तव में वह उलटी होती है। इस शब्द में बांस के ऊपर जो सानुनासिकता दिखाई पड़ती है वह अकारण है। वस्तुतः ये दोनों परिभाषाएं तथा व्याख्याएं सही प्रतीत होती है।

## उलटबांसी परंपरा

यदि हम उलटबांसी परंपरा पर विचार करें तो हमें पता चलता है कि वेदों में भी उलटबांसी के अनेक प्रयोग हुए हैं। 'ऋग्वेद' से विद्वानों ने निम्नलिखित उदाहरण प्रस्तुत किया है।

1. अपदेति प्रथमा पद्वनीनां कस्तद्वां मित्रावरुणा चिकेत।

1. बिना पैरों वाली पैरों वाली से पहले आ जाती है, मित्रावरुण इस रहस्य को नहीं जानते हैं।

'चत्वारि श्रृंगा त्रयोऽस्य पादा द्वे शीर्षे सप्त हस्तासौ अस्य। त्रिधा बृद्धो वृषभो रोखीति।।"

इस बैल के चार सींग, तीन चरण, दो सिर और सात हाथ हैं यह तीन प्रकार सें बंधा हुआ उत्पन्न उच्च शब्द करता है।

2. "इद विपुर्निवचनं जनासश्चरन्ति भन्तद्यस्तयुरायः"

हे मनुष्यों! यह विपु निर्वचन है क्योंकि इसमें जल स्थिर है और नदियां बहती हैं।

3. "के इमं वो नृण्यमांचिकेत, वत्सो मातृः जनयति सुधाभिः'

वन आदि में अंतर्निहित अग्नि को कौन जलाता है? पुत्र होकर भी अग्नि द्वारा अपनी माताओं को हृदय से जन्म देते हैं। वेदों के पश्चात यह परंपरा उपनिषदों में भी देखने को मिलती है। उपनिषदों से होती हुई यह तांबिकों तता वज्रयानी सिद्धों की उक्तियों में भी देखी जा सकती है। यद्यपि उपनिषदों में इसके उदाहरण बहुत कम मिलते हैं परंतु सिद्ध साहित्य वो उलटबांसियों से भरा पड़ा है।

"मातरं पितरं हन्तवा राजानों द्वै च रवत्तिये।

रट्ठं सानुचरं इन्तवा अनिधो याति ब्राह्मणों।।"

अर्थात माता–पिता, दो क्षत्रिय राजाओं और सेवक सहित समूचे राष्ट्र को नष्ट करने के बाद ब्राह्मण पापहीन हो जाता है। बौद्ध धर्म की दो शाखाएं बन गई थी– वज्रयान, सहजयान। इन दोनों संप्रदायों के साहित्यों में उलटबांसियों का प्रवेश काफी हुआ है। विशेषकर चरयापद की उलटबांसियां अवलोकनीय हैं।

सिद्धों की यह परंपरा नाथ साहित्य में भी देखी जा सकती है। परंतु उनके साहित्य की उलटबांसियों में गोपन की वृत्ति नहीं है। केवल चमत्कार की प्रधानता है। स्वयं गुरु गोरखनाथ ने असंख्य उलटबांसियों का प्रयोग किया है। एक उलटबांसी में वे कहते हैं कि पानी में आग लगी है। मछली पहाड़ पर है तथा खरगोश जल मे है। प्यासों के लिए रहट बहने चलने लगे हैं और शूल से बाहर निकल कर कांटा नष्ट हो गया है–

"डूंगरी मंछा जलि  सुसर पानी में दौ लागा।

अरहर बहै तृसालवां, सूलै कांटा भागा।"

बल्कि हम यह कह सकते हैं कि समूचा सिद्ध और नाथ साहित्य उलटबांसियों के लिए प्रसिद्ध है। इन कवियों ने अपनी वाणियों में यत्र तत्र उलटेपन का खुलकर प्रयोग किया है। कवि कबीरदास सिद्धों तथा नाथों से अत्यधिक प्रभावित हैं। अतः उनके काव्य में उलटबांसियों का प्रचुर प्रयोग मिलता है।

## कबीर के काव्य में उलटबांसी

कबीरदास ने अपनी रचनाओं में यूं तो असंख्य उलटबांसियों का प्रयोग किया है। लेकिन उन्होंने अपनी इस प्रकार की रचनाओं को कहीं भी उलटबांसी नहीं कहा। फिर भी उनके काव्य में बेसिर पैर की असंख्य बातें विद्यमान हैं। ये बातें गूढ़ तथा रहस्यात्मक हैं तथा इन्हें समझने के लिए काफी माथापच्ची करनी पड़ती है। इसलिए कुछ विद्वानों ने इन्हें संध्या भाषा की रचनाएं घोषित किया है। ये प्रायः दृष्टिकूट पदों का भी स्पर्श करने लगती हैं। डॉ. सरनाम सिंह के शब्दों में– प्राकृतिक परिस्थितियों को उलटकर विपरीत निरूपण करना ही कबीर की उलटबांसियों का उद्देश्य है। वास्तव में उलटबांसियां धर्म–विपर्यय रूपक है। इनमें प्रतीकों का बहुत गूढ़ एवं सुंदर उपयोग हुआ है। ऐसा वर्णन प्रथम दृष्टि में तो असंभव सा लगता है। किंतु आध्यात्मिक दृष्टि से उसका विश्लेषण करने पर इसमें चमत्कारी अर्थ निहित रहता है। उलटबांसी की अस्पष्टता भाषा या वर्ण्य विषय की नहीं है, वह शैली की है। कबीर या उनके अनुयायी संतों ने ही इस शैली का उपयोग नहीं किया वरन संसार के सभी रहस्यवादी कवियों ने अपने आनंद की अनुभूति व्यक्त करने में इस शैली का आश्रय लिया है। बड़े से बड़ा विद्वान उलटबांसी के अर्थ में उलझ सकता है जो आध्यात्मिक संकेतों से परिचित है। वर्ण्य विषय की दृष्टि से कबीरदास की उलटबांसियों को निम्नलिखित वर्गों में विभक्त किया जा सकता है–

1. रहस्यात्मक अतवा अदभुत रस प्रदान उलटबासियां
2. अलंकार प्रधान उलटबासियां
3. प्रतीक प्रधान उलटबांसियां

### (क) रहस्यात्मक उलटबांसियां

यद्यपि कबीर की उलटबांसियों पर सिद्धों तथा नाथों का प्रभाव देखा जा सकता है। परंतु डॉ. सरनाम सिंह का कथन है कि कबीर की उलटबांसियां सिद्धों की उलटबांसियों के समान नहीं है। विद्वानों का इस विषय में काफी मतभेद है। कारण यह है कि सिद्धों की कुछ उक्तियां कबीर के काव्य में यथावत मिल जाती हैं। रहस्यात्मक या

अद्‌भुत उलटबांसियों में अद्‌भुत रस की विशेष प्रतिष्ठा हुई है। इस संबंध में डॉ. गोबिंद त्रिगुणायत ने कहा भी है– ''कबीर की बहुत–सी उलटबांसियां ऐसी हैं जिनमें विरोधमूलक अलंकारगत चमत्कार अदभुत रस के आश्रित दिखाई पड़ता है। ऐसे स्थलों पर कवि का लक्ष्य घटना, व्यापार और चित्र की अदभुतता को ही अधिक से अधिक प्रयोगपूर्ण शब्दों में व्यक्त करना होता है। ऐसी उक्तियों में प्रतीक और अलंकार गौण पड़ जाते हैं, अदभुत रस मुख्य स्थान ग्रहण कर लेता है। अदभुत चित्रों की कहीं–कहीं इतनी अधिकता पाई जाती है कि हमारा ध्यान अर्थ से हटकर आश्चर्य सागर में डूब जाता है।

टिप्पणी :– कबीर के निम्नलिखित पद्य से यह बात स्वतः स्पष्ट हो जाती है कि उन्होंने अदभुत रस प्रधान उलटबांसियां काफी मात्रा में लिखी हैं। यथा

"डाल गह्या वै मूल न सूझै, मूल गह्या फल पावा।
बंबई उलटि शर मोंलावी, घराने महारस खावा।
बैठि गुफा में सब जग देख्या, बाहर कछु न सूझै।
उलटि धनकि पारथी मार्यो यहु अचरज कोई बूझे।
अंबर बरसै अंबर भीजै, बूझ बिरला कोई।।

## (ख) अलंकार प्रधान उलटबांसियां

यह तो पहले ही स्पष्ट किया जा चुका है कि उलटबांसियों में प्रायःविरोधी बातें ही रहती हैं कवि ने प्रायः उस प्रकार के शब्दों, वाक्यों और प्रसंगों का प्रयोग किया है। वे प्रायः विरोध मूलक हैं। इन अलंकारों में विरोधाभास, असंगति, विभावना विषम आदि अलंकारों का प्रयोग देखा जा सकता है। ये अलंकार किसी न किसी रूप में आश्चर्य की सृष्टि करते हैं।

इस पद्य की प्रथम दो पंक्तियों में विरोधाभास अलंकार है आगे चलकर ''बिन नैनन के सब जन देखै'' तथा लोचन अछतै अंधा में विभावना तथा विशेषोक्ति का प्रयोग है। स्पष्ट है कि कवि ने यहां विरोधमूलक के द्वारा आध्यात्मिक तथ्य की अभिव्यंजना की है।

## (ग) प्रतीक प्रधान उलटबांसियां

साधना के गूढ़ रहस्यों और भावों को अभिव्यक्त करने के लिए कबीरदास ने यत्र–तत्र प्रतीक योजना का सहारा लिया है। कहीं–कहीं गूढ़ पारिभाषिक शब्दावली का प्रयोग करने लगता है इसे भी हम दो भागों में विभक्त कर सकते हैं प्रतीक प्रधान तथा रूपक प्रधान।

### 1. प्रतीक प्रधान

इन उलटबांसियों में रूपक योजना गौण होती है तथा प्रतीकों की योजना प्रधान होती है। निम्नलिखित उदाहरण अवलोकनीय है जिसमें कवि ने रूपक योजना गौण रखकर प्रतीकों को प्रधानता प्रदान की है।

### 2. रूपक प्रधान

इन उलटबांसियों में रूपक योजना की प्रधानता रहती है। इनमें प्रतीकोंका प्रयोग बहुत रूप में किया जाता है। ये उलटबांसियां भी उद्‌भुत रस की सृष्टि करती हैं।

**निष्कर्ष :**

उपर्युक्त विवेचन से यह स्वतः स्पष्ट हो जाता है कि कबीरदास ने उलटबांसियों का आश्रय लेकर आध्यात्मिक तथा साधनात्मक दृष्टि से गूढ़ तथा भावनात्मक भावों की सृष्टि की है जिसका परिणाम यह हुआ कि वे पाठक जिन्हें

सिद्धों, नाथों तथा योगशास्त्र की परिभाषिकता का ज्ञान नहीं है, ये वे कैसे समझ सकते हैं कि माता से पूर्व पुत्र उत्पन्न हो गया या नदी नौका में डूब गई है या कंबल में पानी बरस रहा है परंतु जो कबीर की सांकेतिक भाषा के अर्थों को जानते हैं वे इन अटपटी बातों के अर्थ समझ कर निश्चय से चमत्कृत हो उठे हैं ऐसा भी संभव है कि कबीरदास ने इन उलटबांसियों का प्रयोग तत्कालीन पंडितों तथा मौलवियों को खिजाने के लिए किया हो। कबीरदास की इन अटपटी उक्तियों को देखकर ही कहा गया है– "कबीरदास की उलटि वाणी। बरसैं कंबल भीगै पानी।"

# 8. कबीर का प्रतीक योजना

किसी शब्द, संख्या, नाम, गुण या सिद्धान्त आदि के सूचक चिन्ह को प्रतीक माना जाता है। इसका श्रृंगरेजी रूपान्तर 'सिमबल' (symbol) है। जिसका तात्पर्य बताते हुए कहा गया है कि प्रतीक किसी विचार, भाव या अनुभव का दृश्य या श्रव्य चिन्ह या संकेत है जो उन तथ्यों को स्पष्ट करता है जो केवल मस्तिष्क, द्वारा ही ग्रहण किये जाते हैं। आचार्य परशुराम चतुर्वेदी ने प्रतीक के स्वरूप को भावित करके जो लिखा है, वह नितान्त रेखांकनीय है। वे लिखते हैं कि प्रतीक से अभिप्राय किसी वस्तु की और इंगित करने वाला न तो संकेतमात्र है न उसका स्मरण दिलाने वाला कोई चित्र या प्रतिरूप है यह उसका एक जीता जागता एवं पूर्णतः क्रियाशील प्रतिनिधि है, जिस कारण इसे प्रयोग में लाने वाले को इसके ब्याज से उसके उपयुक्त सभी प्रकार के भावों को सरलतापूर्वक व्यक्त करने का पूरा अवसर मिल जाया करता है।

अस्तु, कहा जा सकता है कि प्रतीक, अलक्ष्य, अप्रस्तुत, अमूर्त के सकल आकार–प्रकार, गुण–धर्म का प्रस्तुत और मूर्त रूप है।

काव्य के अन्तर्गत प्रतीकों के व्यवहार की महत्ता निर्विवाद है क्योंकि रचनाकार प्रतीकों के माध्यम से ही जटिल, सूक्ष्म, अमूर्त अवस्थाओं को शब्दाकार प्रदान करता है। कबीर ने भी अपने अतिश्य सूक्ष्म और अनिर्वचनीय प्रभु को व्यंजित करने के लिए प्रतीकों का सहारा लिया है। उनकी कविता में प्रतीकों के निम्न रूप परिलक्षित होते हैं

1. पारिभाषिक प्रतीक
2. सांकेतिक प्रतीक
3. संख्या मूलक प्रतीक
4. रूपकात्मक प्रतीक
5. विरोधात्मक प्रतीक
6. भावात्मक प्रतीक

**1. पारिभाषिक प्रतीक :**

कबीर ने पारिभाषिक प्रतीकों का प्रयोग अपनी हठयोगिक साधना की व्यंजना के लिए किया है। सन्तों के पारिभाषक प्रतीकों पर सिद्धों और नाथों का प्रस्फुट प्रभाव पड़ा है। इन पारिभाषिक प्रतीकों में इड़ा, पिंगला, सुषुम्ना, अमीरस, कुण्डलिनी, गगन–गुफा, सजि, खसम, निरंजन, त्रिवेणी, आदि का उल्लेख किया जा सकता है।

कबीर ने 'गगन गुफा' का प्रयोग ब्रहमरन्ध्र के लिए किया है। कबीर की आस्था है कि जब साधना से ब्रह्मरन्ध्र उन्मालित हो जाता है, तब अमृतरस झरने लगता है।

कबीर कहते हैं –

रस गगन गुफा मैं अजर झरे।

अजपा सुमिरन जाप करै।।

जो साधक ब्रह्मरन्ध्र तक पहुंच जाता है, वह आवागमन से मुक्त हो जाता है।

**2. सांकेतिक प्रतीक :**

आध्यात्मिक अनुभूतियाँ प्रायः गूढ एवं अनिर्वचनीय होती हैं। हमारी बैखरी वाणी उनकी अभिव्यक्ति में स्वयं को असमर्थ पाती है। फिर भी, प्रत्येक कवि या चिन्तक उन्हें व्यक्त अवश्य करना चाहता है। इसके लिए वह लोक जीवन के उन रूपों, चित्रे, वस्तुओं एवं सम्बन्धों का चयन करता है, जिनमें उनकी अनुभूति का साम्य हो और जो सामान्यतः लोक–परिचित तथा लोक प्रचलित भी हो। (डॉ० ब्रजीत गौतम) इस प्रकार सांकेतिक प्रतीक का विधान होता है।

सांकेतिक प्रतीकों तथा उनके द्वारा संकेतिक भावों में सादृश्य के पाँच आधार–रूप, धर्म, क्रिया, स्वर, प्रभाव माने गये हैं। यहाँ यह शब्दायित करने की आवश्यकता नहीं है कि कबीर की बानियों में पर्याप्त सांकेतिक प्रतीक दृ ष्टिगत होते हैं। सन्तों ने अम्बर, आकाश, ऊँचा टीबा, ऊँचा वृक्ष, गगन, गढ, शिव नगरी, शुन्य आदि को शुन्य चक्र के, अनल, कोल्हू, गोरी, जोनडी, नागिनी, नारी, मछली, रॉड, अमंद आदि को कुण्डलिनी के, औंधा कुवा, केवल कुवा, देहुरा, बनारस गाऊँ, भेंवर गुफा आदि को ब्रहमरन्ध्र के, अमरबेलि, घनबरषि, छाछ, नीर, पानी, महारस आदि को अमर वारूणी के, घंटा, जंत्र, झीझी, जंतर, दमामा, नटवर वाजा, मंदला, सींगी आदि को अनहद नाद के संकेतक के रूप में प्रयुक्त किया है। सांकेतिक प्रतीकों के माध्यम से कबीरदास चित्र बताते हुए लिखते हैं –

"सरवर तटि हसणी तिसाई।

जगति बिना हरि जल पिया न जाई।।

पीया चाहै तौ लै खग सारी, उडि न सके दोऊ पर भारी।

कुभलीय ठाडी पनहारी, गुण विन नीर भरै कैसे नारी ।।

कहै कवीर गुर एक बुधि वताई, सहज स्वभाव मिलै राम राई।।

यहाँ पर सखर–सहस्रार, हंसिनी–आत्मा, खग–कुण्डलिनी, पनिहारी–कुण्डलिनी, गुण–सुषुम्ना नाडी का संकेतक है। अस्तु, पूरे अवतरण में सांकेतिक प्रतीक है।

**3. संख्या मूलक प्रतीक :**

संख्याओं (एक, दो, तीन, पाँच, छः आदि) से जिन प्रतीकों की सर्जना होती है, वे संख्यामूलक प्रतीक कहलाते हैं। सन्त कबीर ने 'एक नारी' को माया के लिए, 'एकै पुरूष' को ब्रह्म के लिए, 'एकै अषिर' ऊँ के लिए, 'एक कुंभरा' विधाता के लिए, 'एक दुआरा' ब्रह्मरन्ध्र के लिए प्रयुक्त किया है।

संख्यामूलक प्रतीकों में एक के बाद कबीर ने पाँच का बड़ा व्यापक व्यवहार किया है। यह पाँच ज्ञानेन्द्रियों (हाथ, पूव, वाणी, मल तथा मूत्रद्वार), पाँच विकारों (काम, क्रोध, मद, लोभ, तथा मोह) के लिए व्यवहत किया गया है। कबीर ने इन्ही सन्दी में पाँच का प्रयोग किया है।

उदाहरणार्थ :

पंच संगी पिव पिव करे,

कहै कबीर जो पंचौं मारै, आप तिरै और तारे।

यहाँ पंच संगी – पाँच ज्ञानेन्द्रियों के तथा पंचौ–पॉच विकारों के प्रतीक हैं।

कबीर के काव्य में छः का प्रयोग मन, तान्त्रिक षटकर्म (मारण, उच्चाटन, स्तम्भन, वशीकरण, शांति, विदूषण), सर्वजन विदित षट्कर्म (स्नान, सन्ध्या, पूजा, तप, तर्पण, होम), योग सम्बन्धी षट्कर्म (धोति, वस्ति, नेति, त्राटक, मौलिक, कमाल आदि) सन्दर्भो में किया गया है। कबीर काव्य का प्रयोग मुख्यतः नवधा भक्ति, शरीर के नवद्वार (दो आँख, दो कान, दो नासा–विवर, मुख, मलद्वार तथा मूत्रद्वार), नौ नाडियाँ (इडा, पिंगला, सुषुम्ना, गान्धारी, हस्तिजिवह्या, पूषा, पयस्विनी, लकुहा, अलम्बुसा), नौ गुण (शम, दम, शोच, क्षमा, आर्जव, ज्ञान, विज्ञान, आस्तिक्य) के लिए, दस का व्यवहार दस वायु (प्राण, अपान, समान, व्यान, उदान, नाग, कर्म, कृकर, देवदत्त, धनंजय), शरीर के दस छिद्र (दो आँख, दो कान, नासा–विवर, मुख, मलद्वार, मुत्राधार) के लिए, बारह का द्वादशदल कमल (अनाहत चक्र) के लिए, चौदह का चौदह भुवन (भू, भुवः स्वः, महः, जनः, तपः, सत्य, अतल, सुतल, वितल, तलातल, महातल, रसातल, तथा पाताल) के लिए, सोलह का विशुद्ध चक्र तथा सोलह श्रृंगार (उबटन, स्नान, सुन्दर वस्त्र धारण, बाल संवारना, काजल, सिंदूर, महावर, तिलक, चिबुक पर तिल, मेंहदी, सुगन्धि, आभूषण, पुष्प माला, मिस्सी, पान, होठ रचना आदि) के लिए, पच्चीस तत्वों (पाँचों तत्पों की पाँच–पाँच प्रकृतियाँ, आकाश– काम, क्रोध, लाभ, मोह, भयय वायु – चलन, बलन, धावन, प्रसारण, संकोचनय अग्नि – क्षुधा, तृषा, आलस, निद्रा, मैथुनय जल – लार, रक्त, पसीना, मूत्र, वीर्य; पृथ्वी – हाड़, मांस, त्वचा, रीम, नाडी) के लिए, चौसठ दीवा चौसठ कलाओं के लिए प्रयुक्त हुए हैं।

संख्यामूलक प्रतीकों के अन्तर्गत एक, पाँच, नौ, दस, पच्चीस आदि के लिए कबीर का 'मेरे जैसे बनिज सौं कवन काज' वाला पद अवलोकनीय है।

उदाहरणार्थ –

मेरे जैसे बनिज सौं कवन काज,
मूल घटें सिरि बधै ब्याज
नाइक एक बनिजारे पाँच, बैल पचीस कौ संग साथ।
नव बहियों दस गौनि आहि, कसनि बहतरि लागै ताहि।।
सात सूत मिल्वि बनिज कीन्ह, कर्म पयादौ संग लीन्ह।
तीन जगति करत शरि, चल्यौ है बनिज वा वनज झारि।।
बनिज सुटानौं पूँजी टूटि, षाडू यह दिसि गयौ फूटि।
कहै कबीर यह जन्म बाद, सहजि समानू रही लादि ।।

**4. रूपकात्मक प्रतीक :**

रूपकात्मक प्रतीक केवल रूपक अलंकार तक ही सीमित न होकर, काफी विस्तार को लिये हुए है। कबीर ने दर्शन की जटिलता को सरल बनाने के उद्देश्य से रूपकों की रचना की है। कबीर रूप की के अप्रस्तुत कार्य और परिस्थिति के सम्पूर्ण विम्ब को उतारने में अत्यन्त सफल हुए हैं। सन्त कबीर रूपकात्मक प्रतीक की आयोजना करते हुए लिखते हैं कि–

काहे री नलिनी तूं कुमिलांनी।
तेरे ही नालि सरोवर पांनी।।

जल मैं उतपति जल मैं बास, जल मैं नलनी तोर निवास

ना तलि तपति न उपर आगि, तोर हेतु कहु कासनि लागि

कहै कबीर जे उदिक समांन, ते नहीं मूए हमारे जान।

यहाँ पर नलिनी – आत्मा, सरोबर पानी तथा जल – हरि के उपमान के रूप में आकार दार्शनिक जटिलता को बड़ी सरलता और स्पष्टता के साथ व्यंजित करने में समर्थ हुए हैं ।

**5. विरोधात्मक प्रतीक :**

विरोधमूलक प्रतीक उक्ति चमत्कार पर आश्रित होते हैं। इन्ही के अन्तर्गत अलटवासियों आती हैं। उदाहरण द्रष्टव्य हैं –

''ऑगणि बेलि अकासि फल, अण व्यावर का दूध ।

ससासींग की धुनहड़ी, रमैं बाँझ का पूत।।''

आशय यह है कि माया उस लता के समान है जो संसार रूपी ऑगन में लगी है, जिसका फल आकाश में लगता है। वह माया बिना ब्याई हुई गाय के दूध के समान है, खरगोश की सींगकी ध्वनि के समान है। वह बंध्या के पुत्र की क्रीड़ा के समान है। अर्थात् ये विरूद्ध बातें हैं।

**6. भावात्मक प्रतीक :**

भावात्मक प्रतीकों के अन्तर्गत प्रेमी और प्रियतमा के प्रतीक आवेंगे। निर्गुण कवियों ने ब्रह्म को अपना 'पीव', 'प्रीतम', 'कंत' आदि मानकर अपनी भावानात्मक समीपता व्यक्त की है। भावात्मक प्रतीक विधान के अन्तर्गत प्रणय के दोनों रूप दृष्टिगत होते हैं। इसके अन्तर्गत कहीं तो मिलन के आनन्द का महासागर तरंगयित हो रहा है और कहीं व्यथा की अपार 'पीर' चिह को चीर रही है। कबीर की आत्मा जब उसे अपने घट के भीतर प्राप्त कर लेती है, तब उस 'पीव' को न जाने देने के लिए कटिबद्ध हो जाती है –

अब तोहिं जान न देहूं राम पियारे।

ज्यौं भावै त्यौं होहु हमारे।।

बहुत दिनन के बिछुरे हरि पाए। भाग बड़े घर बैठे आएं।।

चरननि लागि करौं बरिआई। प्रेम प्रीति राखौं उरझाई ।।

आज बसौं मन मन्दिर चोखै। कहै कबीर परहु मति धोखै ।।

सारांशतः कहा जा सकता है कबीर का प्रतीक कोष बड़ा व्यापक है। उनके अधिकांश प्रतीक प्रकृति–जगत से लिये गये हैं। उनकी प्रतीक योजना पर नाथों और सिद्धों का प्रभाव है, लेकिन वह पिष्टपेषण मात्र नहीं हैं। कबीर ने अपनी प्रतीक–योजना को एक नया सन्दर्भ प्रदान किया है। उन्होंने एक–एक भाव–स्थिति के लिए कई–कई प्रतीकों का आयोजन किया है।

## (ग) कबीर का अप्रस्तुत विधान :

कबीर के अन्तर्गत अप्रस्तुतों की महत्ता निर्विवाद है। अप्रस्तुत उत्तम काव्य के अनिवार्य उपादान है। अप्रस्तुतों को ही उपमान की भी संज्ञा प्राप्त है। आलंकारिक योजना के मुख्य दोनों तत्वों उपमेय और उपमान में उपमान या अप्रस्तुत योजना ही मुख्य है। यह काव्य का प्राण है, कला का मूल है और कवि की कसौटी है। यही काव्य में

प्रभाव उत्पन्न करती है, प्रेषणीयता लाती है, भावों को विशद बनाती है और रसनीयता को वर्द्धिता करती है। जो कविता अप्रस्तुत योजना से शुन्य होती है वह उतनी ह्रदयाकर्षक नहीं होती, अमन्द आनन्द के दान में समर्थ नहीं होती । (राम दहिन मिश्र)

वास्तव में अप्रस्तुत रूप, गुण और धर्म को लक्षित करके कल्पना के आधार पर लाया गया तत्व है। यह अप्रस्तुत भिन्न–भिन्न अलंकारों में भिन्न भिन्न स्वरूप को लेकर समाहित रहता है। अलंकारों की सृष्टि ही अप्रस्तुतों की पीठिका पर होती है और अलंकाररहित काव्य की कल्पना दुरूह होती है। इसलिए काव्य, कवि और सह्रदय सभी के लिए अप्रस्तुतों की पहचान आवश्यक है, सभी इसकी प्रभा और प्रभाव से अनुप्राणित हैं।

सामान्य रूप से तो अप्रस्तुत–विधान का विभाजन साम्यमूलक, अतिशय मूलक, विरोधमूलक (वैषम्यमूलक) आदि रूपो में किया जाता है, लेकिन जिन अलंकारों में अप्रस्तुत को खेलने का खुलकर अवसर मिलता है, ते अलंकार अधोलिखित हैं – उपमा, रूपक, दृष्टान्त, अन्योक्ति, समासोक्ति, उत्प्रेक्षा, व्यतिरेक, उल्लेख, प्रान्तिमान, तदगुण, अतदगुण, विशेषोक्ति, प्रतिवस्तूपमा, लोकोक्ति, प्रतीक, विशेषोक्ति, भेदकातिशयोक्ति आदि आदि । कतिपय प्रधान अलंकारों के परिप्रेक्ष्य में कबीर के अप्रस्तुत विधान का अनुशीलन इस प्रकार किया जा सकता है–

**उपमा :**

सादृश्यमूलक अलंकारों में उपमा की प्रमुखता असंदिग्ध है। कबीर ने अपने अभीष्ट को प्रस्तुत स्पष्ट बनाने के लिए अप्रस्तुतों का आनयन किया है। कबीर माया को 'मीठी खॉड' के समान बताते हुए कहते हैं –

कबीर माया मोहिनी, जैसी मीठी खाँड।

सतगुर की कृपा भई, नहीं तो करती भाँड।।

यहाँ पर उपमा के चारों अंग उपमेय, उपमान, साधारण–धर्म और वाचक शब्द विद्यमान हैं, अस्तु पूर्णोपमा है।

**रूपक :**

कबीर ने अपनी संधारणा और संदृष्टि को सुरेखित करने के लिए अनेक स्थलों पर रूपक अलंकार का सुन्दर प्रयोग किया है। रूपक अलंकार में उपमान उपमेय पर आरोपित रहता है। रूपकाश्रित उपमान की कतिपय छवियाँ संलक्ष्य है। सन्त कबीर का 'ज्ञान की ऑधी' वाला सांगरूपक साहित्य जगत में बहुचर्चित है। कबीर का अभिमत है कि अज्ञान के आवरण से ही ज्ञान की ज्योति का उन्मेष होता है और भक्ति का उदय भी। इस भाव–सत्य को कबीर ने छप्पर, ऑधी और वर्षा की रूपक–रचना के द्वारा व्यंजित करने का प्रयास किया है। वे कहते हैं कि .

संतौ भाई आई ग्यॉन की ऑधी रे।

भ्रम की टाटी सबै उडॉणी, माया रहै न बॉधी।।

हिति चित की द्वै यूँनी गिराँनी, मोह बलिंडा तूटा।

त्रिस्ना छोनि परि घर उपरि, कुबधि का भॉडॉ फूटा।।

जोग जुगति करि संतौं बॉधी, निरचू चुवै न पॉणी।

कूड़ कपट काया का निकस्या, हरि की गति जब जॉणी।।

ऑधी पी0 जो जल बूढा, प्रेम हरि जन भींना।

कहै कबीर भॉन के प्रगटे उदित भया तम पीनॉ।।

कबीर ने अन्यत्र भी मन के लिए मथुरा, दिल के लिए द्वारका, काया के लिए काशी तथ ब्रह्मरन्ध्र के लिए देवालयों का रूपक प्रस्तुत किया है। यथा –

मन मथुरा, दिल द्वारिका, काया कासी जाणि।

दसवां द्वारा देहुरा, तामैं जोति पिछांणि।।

**दृष्टान्त :**

कबीर ने अपने मत की पुष्टि के लिए अनेक दृष्टान्तों का प्रयोग किया है। सन्त कबीर ने सुन्दरी नारा का भयकरता तथा दाहकता को उद्दिष्ट करके उसे अग्नि के दृष्टान्त के रूप में प्रस्तुत किया है। यथा –

सुन्दरि थै सूली भली, विरला बंचौ कोइ ।

लौह निहाला अगनि में, जलि बलि कोइला होइ।।

**उदाहरण :**

चूंकि कबीर का पूरा साहित्य सामान्य जन के उद्‌बोधन के लिए रचा–लिखा गया है, अस्तु वहाँ कथन को स्पष्ट एवं बोधगम्य बनाने के लिए पर्याप्त उदाहरणों का प्रयोग दृष्टिगत होता है। सन्त कबीर ने कामी व्यक्ति की स्थिति का बोध कराने के लिए निद्राभिभूत व्यक्ति का उदाहरण दिया है –

कॉमी लज्जा ना करे, मन मोह अहिलाद।

नींद मांगै सॉथरा, भूष न मांगै स्वाद।।

उक्त कतिपय अलंकारों में समाहित अप्रस्तुत–विधान को लक्षित करके कहा जा सकता है कि कबीर का अलंकार विधान अनायास और आनन्दात्मक है। वह उनकी कविता पर आरोपित नहीं है। उदाहरण दे देकर सारे अलंकारों को सविस्तार समझाया जा सकता है, लेकिन इस कार्य से अनावश्यक विस्तार हो जायेगा। इसलिए, इस सन्दर्भ में यही ज्ञातव्य है कि कबीर ने अपने अप्रस्तुतों का चयन लौकिक और प्राकृतिक जगत से किया है। उन्होंने औपम्यमूलक उपमानों का प्रयोग कथ्य को उत्कर्ष प्रदान करने के लिए तथा रूपकमूलक उपमान का प्रयोग प्रतिपाद्य को विश्वसनीयता प्रदान करने के लिए किया है।

# 9. कबीर की भाषा

बहुधा यह सुना जाता है कि कबीर किसी एक स्थान के निवासी नहीं थे। उनकी भाषा कोई निश्चित भाषा नहीं थी और उनकी अभिव्यक्ति अटपटी थी लेकिन यह भी कहा जाता है कि उनकी वाणी के अनेक पदों पर रसभरी पिचकारियां हैं जो छूटते ही अंग–अंग पर एक विचित्र ढंग का रंग चढ़ा देती है ऐसे ही पदों में कबीर की काव्यधारा और सहजवाणी के प्रवाह का संगम हुआ है। जिससे पाठक रस विभोर हो उठता है। जहाँ मस्ती है, जहाँ मादकता है वही उनके सहज उद्‌गार भी है जिन में अनुभव की गहरी चोट और कल्पना का पर्याप्त पुट है। स्पष्टता, निर्भीकता, सरलता और अनुभूति प्रवणता के कारण उनकी काव्य भाषा यदि सहज एवं सरल है तो कहीं–कहीं कठोर भी है। विशेषकर लोक की देखकर जब वे कभी क्रुद्ध हो उठते हैं, तभी उनकी वाणी या पाषाण–वर्षिणी हो जाती है। ऐसे स्थलों पर वे एक आलोचक बन जाते हैं।

कबीर के जीवन की भांति उनकी भाषा भी अत्यन्त विवादास्पद रही है। प्रामाणिक पाठ की अनिश्चितता के कारण उनकी भाषा के सम्बन्ध में भी अलग–अलग मत व्यक्त किए गए हैं। उनकी भाषा में विविध बोलियों और भाषाओं की शब्दावली देखकर डॉ0 रामकुमार वर्मा ने लिखा "भाषा बहुत अपरिष्कृत है। इसमें कोई विशेष सौन्दर्य नही है।"

आचार्य रामचन्द्र शुक्ल ने अपने साहित्य–इतिहास ग्रंथ में लिखा है, "साखी की भाषा सधुक्कड़ी अर्थात् राजस्थानी पंजाबी मिली खड़ी बोली है, पर रमैणी और सबद् में गाने के पद हैं जिनमें काव्य की ब्रजभाषा और कहीं–कहीं पूरबी का भी व्यवहार है।"

डॉ0 श्यामदास ने 'कबीर ग्रन्थावली' की भूमिका में लिखा है, "कबीर में केवल शब्द ही नहीं, क्रियापद, कारक चिह्नादि भी कई भाषाओं के मिलते हैं। क्रियापदों के रूप अधिकतर ब्रजभाषा और खड़ी बोली के है।" यद्यपि कबीर ने स्वयं कहा है, "मेरी बोली पूरबी, तथापि खड़ी, ब्रज, पंजाबी, राजस्थानी, अरबी–फारसी आदि अनेक भाषाओं का पुट उनकी उक्तियों पर चढ़ा हुआ है।"

व्याकरण की दृष्टि से विचार करने पर कबीर भाषा का कोई एक निश्चित रूप निर्दिष्ट नहीं किया जा सकता।

इन सबके विपरीत आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी ने उन्हें वाणी के डिक्टेटर कहते हुए लिखा है, "जिस बात को उन्होंने जिस रूप में प्रकट करना चाहा उसे उसी रूप में भाषा से कहलवा लिया–बन गया है तो सीधे–सीधे, न हीं तो दरेरा देकर। भाषा कबीर के सामने कुछ लाचार भी नजर आती है। उसमें मानों हिम्मत ही नहीं है कि इस लापरवाह फक्कड़ की किसी फरमाइश को पूरा न कर सके। अकथ कहानी को रूप देकर मनोग्राही बना देने की जैसी ताकत कबीर की भाषा में है, वैसी बहुत कम लेखकों में पाई जाती है वाणी के ऐसे बादशाह को साहित्य रसिक काव्यानन्द का आस्वाद कराने वाला न समझे तो उन्हें दोष नहीं दिया जा सकता है।" इन शब्दों में आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी ने कबीर की भाषा को उसकी मूल संवेदना के स्तर पर समझाने की चेष्टा की है वस्तुतः कबीर की भाषा को दो प्रमुख विशेषताएं है पहली विशेषता है वर्ण्य वस्तु को प्रभावशाली ढंग से व्यक्त करने की क्षमता। दूसरी विशेषता है कबीर के व्यक्तित्व की सफल व्यंजना। आचार्य द्विवेदी के कथन में ये दोनों विशेषताएं समाहित है

वाणी के डिक्टेटर कहने का तात्पर्य है शब्दों को समकालीन सांस्कृतिक मंथन के अनुरूप नई अर्थवत्ता प्रदान करना और अपने कथनों को अखंड आत्मविश्वास की गरिमा से मंडित करना।

'हिंदी साहित्य के इतिहास' में कबीर की भाषा के स्त्रोत के संदर्भ में आचार्य रामचन्द्र शुक्ल ने लिखा है कि, "कबीर आदि संतों को नाथपंथियों से जिस प्रकार साखी और बानी शब्द मिले उसी प्रकार साखी और बानी के लिए बहुत कुछ सामग्री और सधुक्कड़ी भाषा भी" इसी प्रकार किसी ने इसे 'खिचड़ी' कहा और किसी ने 'संध्याभाषा'। वस्तुतः कबीर की भाषा का अध्ययन करने से पता चलता है कि उसमें पूर्ण प्रेषणीयता और प्रनविष्णुता है। वह उनकी सहज साधना के अनुकूल स्वाभाविक भाषा है। उसमें किसी प्रकार की बनावट नहीं है यह भाषा उच्च वर्ग की भाषा की अपेक्षा जनसाधारण को बोलियों की अधिक निकट है इसलिए इसे तत्कालीन जनभाषा के रूप में स्वीकार किया जा सकता है कबीर की भाषा की निम्नलिखित विशेषताएं उल्लेखनीय है।

### स्वाभाविक भाषा की प्रयोग

कबीर की भाषा को ध्यानपूर्वक देखने पर हमें उसमें स्वाभाविकता के दर्शन होते है हम उनकी भाषा को कृत्रिम नहीं कह सकते। एक इतने बड़े क्रांति पथिक से हम किसी प्रकार की कृत्रिमता की आशा नहीं रख सकते। कबीरदास ने उस भाषा का प्रयोग किया है जो पंजाब से दक्षिण तक बोली जाती थी इसे स्वयं कबीर बोलते थे। इसे हम कबीर की रचनाओं में देख सकते है अनेक भाषाओं तथा बोलियों के शब्द होने पर भी कबीर की भाषा मिश्रित नहीं कही जा सकती। न ही वह रूढ़ काव्य भाषा थी। वह स्वाभाविक बोलचाल की भाषा थी जिसमें उनके बोलचाल के शब्द स्वतः मिल गए थे। एक उदाहरण देखिए।

1. "यह तन काचा कुंभ है लियो फिरै था साथ।
   उबका लगा फूटि गया, कछु न आयो हाथ।।"
2. "गुरू गोविंद दोऊ खड़े, काके लागू पाय।
   बलिहारी गुरू अपने, जिन गोविन्द दियो मिलाय।।"

आधुनिक साहित्य जागरण के साथ ही कबीर की भाषा के बारे में अनेक प्रश्न उत्पन्न होने लगे। इस संबंध में निरन्तर चर्चा चली आ रही है। परन्तु अब तक कोई एक मत स्थापित नहीं हो पाया। उनकी भाषा में विविध भाषाओं तथा बोलियों की शब्दावली तथा रूपक देखकर अकसर कह देते है कबीर की भाषा बड़ी अपरिष्कृत है उसमें कोई विशेष सौन्दर्य नहीं। परन्तु हमें यह नही भूलना चाहिए कि भाषा के बारे में कबीर का दृष्टिकोण बड़ा ही उदार तथा व्याक था। उनकी गहनशीलता तथा उदारवृत्ति ने उनकी काव्यभाषा को न केवल निर्मल बनाया, अपितु उसमें सरलता तथा स्वाभाविकता का भी समावेश कर दिया। कवि की भाषा ने उसके भावों के उद्वेग के समक्ष किसी बंधन को स्वीकार नहीं किया। बल्कि वह तो वेगवती नदी के समान अपना मार्ग स्वयं प्रशस्त करती हुई बढ़ जाती है अभिव्यक्त को व्यक्त करने की और अमूर्त को मूर्त बनाने की जो मनोहरता तथा क्षमता कबीर की भाषा में है वह अन्यत्र बहुत कम दृष्टिगोचर होती है वाणी के ऐसे बादशाह के साहित्य का रसिक यदि काव्यानन्द का स्वाद न ले सके तो कवि की भाषा को दोष नहीं दिया जा सकता। कबीर की भाषाई उदारता ने ही उनके काव्य को देशकाल की सीमाओं से मुक्त करके उसे विश्व काव्य में अमर स्थान दिला दिया।

### अटपटी भाषा

कबीर की भाषा को पूर्वी मानने वाले विद्वानों ने कबीर 'बीजक' के निम्नलिखित दोहे को उद्धृत किया है

"बोली हमरी पूरब की, हमें लखैं नहिं कोय।

हम को तो सोई लखै, धुर पूरब का होय।"

'पूरब' की शब्द के कारण कबीर की भाषा में काफी भ्रम उत्पन्न हो गया एक अन्य रमैणी में कबीर ने 'पूर्व दिशा' शब्द का प्रयोग जीवात्मा तथा परमात्मा के बीच उस स्थिति के लिए किया है जहां दोनों में किसी प्रकार का अंतर नहीं रहता। इसी प्रकार से कबीरदास की भाषा में अवधि, भोजपुरी, ब्रज तथा राजस्थानी बोलियों के शब्दों का खुलकर प्रयोग मिलता है। आचार्य परशुराम चतुर्वेदी ने इस संबंध में कबीर की भाषा के कुछ विभिन्न उदाहरण भी दिए हैं

भोजपुरी – "ना हम जीवत मुव न ले मांही"

अवधि – "जस तस तोहि कोई न जान।"

खड़ी बोला – "करणी किया करम का नास।"

पंजाबी – "लूण बिलग्गा पांणियां पांणी लूण बलग्ग।"

बृजभाषा – "अपनयौ आपुन ही बिसरयौ, लेटयौ भोमि बहुत पछितानौ
लालचि लागौ करत कनीं।"

राजस्थानी – "क्या जाणों उस पीव कूं, कैसे रहसी संग।"

इस प्रकार हम देखते है कि कबीर की भाषा में हमें अनेक भाषाओं को पुट मिलता है उनकी भाषा पर साहित्यिक प्रभाव नहीं हो सकता। उन्हें तो देश के कोने–कोने में अपने विचारों को पहुंचाना था। इसलिए उन्होंने जनसाधारण की भाषा से संपर्क स्थापित कर अपने भावों को अभिव्यक्त किया। इसका परिणाम यह हुआ कि उनकी भाषा में अपने आप अनेक शब्दावलियों का मेल हो गया लेकिन इस आधार पर ही हम कबीर की भाषा को अटपटी नहीं कह सकते। श्री सूर्यकिरण पारिख ने अपने लेख में लिखा है कि, "कबीर ने जिस भाषा में काव्य रचना की है वह उस प्रचालित साहित्यिक भाषा थी जो किसी प्रांत विशेष की बोलचाल की भाषा नहीं थी यही कारण है कि बहु पर्यटन गामी होने के कारण सिद्धांत संकुचित प्रांतीयता तथा क्षुद्र मंत मंतातरों के विरोधी होने के कारण कबीर ने ऐसी व्यापक देशी भाषा को साहित्य रचना के लिए उपयुक्त समझा।"

## मौलिक भाषा का प्रयोग

'बोली हमारी पूरब की' कहकर अपने आध्यात्मिक संकेत से कबीर ने कुछ विवाद अवश्य प्रस्तुत कर दिए है। कबीर की बोली को अहमदशाह ने बनारस, मिर्जापुर तथा गोरखपुर के आस–पास की हिंदी माना है उधर आचार्य शुक्ल ने उसमें अनेक बोलियों का मिश्रण देखकर उसे सधुक्कड़ी कह डाला। डॉ0 हजारी प्रसाद द्विवेदी ने कबीर की भाषा को सधुक्कड़ी ही नहीं संध्या भाषा में स्थान दे दिया। यह वह परम्परा थी जिसका श्रीगणेश सिद्धांतो से हुआ था। परन्तु हमें इस बात पर भी ध्यान रखना चाहिए कि सिद्धों की भाषा पथ–भ्रष्ट करने वाली थी। परन्तु कबीर की भाषा पथ–प्रदर्शिका है। यह भी उचित है कि कबीर ने कुछ शब्दों को अपने अर्थ प्रदान किए है। उदाहरणतः 'माया' शब्द को कबीर ने जो व्याख्या प्रदान की है वह जिस प्रकार शिक्षितों के लिए बोधगम्य है उसी प्रकार अशिक्षितों के लिए भी।

कबीरदास ने भाषा को रूढ़ियों से मुक्त करके नूतन प्रकाश प्रदान किया शब्दों ने अपने अर्थ दिले और अर्थो ने अपनी विकृतियां बदली। कबीर की भाषा न तो सिद्धों की भाषा है तथा न ही नाथपंथी योगियो की, तथा न ही रामानन्द की। कबीर ने मौलिक भाषा का प्रयोग किया है जिस पर उनके देशाटन, उनकी शिष्य मंडली तथा उनकी सहज साधुवृत्ति का प्रभाव है जो लोग कहते है कि कबीर की अपनी कोई भाषी नहीं वे भाषा के मर्म की उपेक्षा

करते है कि कबीर की अपनी कोई भाषा नहीं वे भाषा के मर्म की उपेक्षा करते है। कबीर ने जिस भाषा का प्रयोग किया वह उनके समय की भाषा थी जिसका व्यापक प्रचलन था इसलिए उनकी भाषा में सब भाषाओं के शब्द दृष्टिगोचर होते है एक उदाहरण देखिए।

मेरा तेरा मनुआ कैसे इक होई रे

मैं कहता आखिर की देखी, तू कहता कागद की लेखी।

मैं कहता सुरझावनहारी, तू राख्यौ उरझाई रे।

**विभिन्न शब्दों का प्रयोग**

शब्द के प्राय चार भेद माने जाते हैं, तत्सम, तदभव देशज तथा विदेशज। कबीरदास की भाषा में हमें चारों प्रकार के शब्दों का प्रयोग मिल जाता है जिनका विवेचन इस प्रकार है–

तत्सम शब्द–

कबीर की काव्य भाषा में तत्सम शब्दों का प्रयोग पर्याप्त मात्रा में हुआ है। फिर भी कबीर द्वारा इन शब्दों का प्रयोग आग्रहपूर्वक नहीं किया गया। कारण यह है कि वे तो एक जनभाषा के कवि थे। साहित्यिक भाषा के नहीं। फिर भी उनके काव्य मे ंयत्र–तत्र तत्सम शब्दों का प्रयोग देखा जा सकता है यथा–

"सतगुरु की महिमा अनन्त, अनन्त किया उपकार।

लोचन अनन्त उघाडिया, अनन्त दिखावणहार।।"

**तद्भव शब्द**

तद्भव शब्द उन्हें कहते है जिनका मूल रूप बिगड़ जाता है यथा अग्नि से 'आग' दुग्ध से 'दूध'। कबीर की काव्य भाषा में तद्भव शब्दों का अपेक्षाकृत अधिक प्रयोग है। इसके दो कारण है एक तो कबीर स्वयं अनपढ़ थे। वे कहते भी है।

"मसि कागज छुआ नहि, कलम गहि नहिं हाथ।"

दूसरा कारण यह भी है कि कबीरदास के अनुयायी आम लोग थे अतः कबीरदास ने तत्सम शब्दों की अपेक्षा तद्भव शब्दों का अधिक प्रयोग किया है। उदाहरणतः

1. नव न जाणौ गांव का, मारगि लागा जाऊं।

   काल्हि जु काटां भाजिसी, पहिन क्यून खडाऊ।।

2. कबीर यहु जग अंधला, जैसी अंधी गाई।

   बछा था तो मीर गया, अभी चाम चटाई।।

**देशज शब्द**

देशज शब्द वे होते है, जो सामान्य बोलचाल की भाषा में प्रयुक्त किए जाते है विशेषकर, अनपढ़ लोग इन शब्दों का अधिक प्रयोग करते है यथा माटी, रूंदना आदि। कबीरदास ने अपनी पर्यटनशीलता के कारण देशज शब्दों का प्रयोग भी प्रचुर मात्रा में किया है इसका यह भी कारण था कि कबीरदास तत्कालीन साधारण जनता को उपदेश देना चाहते थे इसलिए भी उन्हें देशज शब्दों का अधिकाधिक प्रयोग करना पड़ा। एक उदाहरण देखे।

"माटी कहै कुम्हार सूं, तू क्यों रूंदै मोय।

एक दिन ऐसा आयेगा, मैं रूदूंगी तोय।।"

## विदेशी शब्द

विदेशी शब्दों के अन्तर्गत भारतीय भाषाओं को छोड़कर अन्य सभी विदेशी भाषाओं का प्रयोग होता है तत्कालीन अरबी–फारसी शब्द विदेशी माने गए है कबीरदास ने तत्कालीन राजनैतिक तथा सामाजिक परिस्थितियों के कारण अरबी–फारसी शब्दों का प्रयोग किया है एक उदाहरण देखिए।

"मीयां तुमसौ बोल्यां बणि नहि आवै।

हम मसकीन खुदाई बंदे, तुम्हार जस मनि भावै।

अलह अवलि दीन का साहिब जोर नहीं फुरमाया।

मुरसिद पीर तुम्हारे है को कहो कहां थै आया।

रोजा करै निवाज गुजारे, कलमे, भिसत न होई।

सत्तरि काबे इक दिल भीतरि जे करि जाने कोई।

## अलंकार योजना

कबीरदास को अलंकारों का कोई शास्त्रीय ज्ञान नहीं था लेकिन फिर भी उन्होंने अपनी काव्य भाषा में अंलकारों का खुलकर प्रयोग किया है। कहीं–कहीं तो अलंकारों के प्रयोग से उनकी काव्यभाषा पाठक को चमत्कृत कर देती है वस्तुतः काव्य में अलंकारों का प्रयोग केवल भाषा को सजाने के लिए ही नहीं किया जाता बल्कि भावों को स्पष्ट करने के लिए तथा प्रभावोत्पादकता के लिए भी किया जाता है। कबीर ने इसी दृष्टि से अलंकारों का प्रयोग किया है उन्होंने शब्दालंकारों, अर्थालंकारों तथा उभयालंकारों तीनों का प्रयोग किया है। उपमालंकार का उदाहरण देखे।

"सतगुरू सवान को सगा, सोधी सई न दाति।

हरि जी सवानं को हितू, हजिन सई न जाति।

रूपक का उदाहरण

पानी केरा बुदबुदा, अस मानस की जाति

देखत ही छिप जाहिगे, ज्यूं तारा पारिभांति।

उपमा तथा रूपकों के अतिरिक्त कवि ने उत्प्रेक्षा अत्युक्ति, लोकोक्ति, विभावना, अर्थातरन्यास काव्यलिंग, दृष्टान्त आदि अलंकारों का भी खुलकर प्रयोग किया है। विशेषकर कवि की आन्योक्तियां तो काफी प्रभावशाली हैं। काव्यलिंग का एक उदाहरण देखिए–

'राम पियारा को छांडि के, करै आन का जाप।

वेस्या केरा पूत ज्यूं, कहै कोन सू बाप।।"

परन्तु कवि ने दोहा छन्द के अतिरिक्त अपने पदों में गौड़ी, रामकली, आसावरी भैस, बिलावल, ललित, बसन्त, कल्याण सारंग, मलार, धनाक्षरी आदि रागों का भी सफलतापूर्वक प्रयोग किया है। संक्षेप में कबीर की काव्य भाषा में सखी (दोहा पद) शब्द रमैणी का सफलतापूर्वक प्रयोग किया है। माधुर्य गुण का एक उदाहरण देखिए–

"आछे दिन पाछे गये, हरि सै कि न हेत।

अब पछताए होत क्या, जब चिड़िया चुग गई खेत।।"

संक्षेप में हम कह सकते हैं कि कबीर की भाषा सहज, सरल तथा समृद्ध है। उनकी भाषा मौलिक, स्वाभाविक तथा बोधगम्य जनभाषा है। उसे परिष्कृत हिन्दी नहीं कहा जा सकता। परन्तु उन्हें अशिक्षित समझ कर हम उनकी भाषा को अपरिष्कृत या खिचड़ी भाषा भी नहीं कह सकते। कबीर की भाषा एक महान् क्रान्तिकारी कवि की भाषा है। वे निश्चय ही वाणी के डिक्टेटर थे। सब ले देकर मिश्रण एवम् निखार–सँवार की कमी आदि के कारण कबीर की भाषा अनगढ़ है। किन्तु उनका यह गुण इस युगान्तकारी कवि के क्रान्तिकारी व्यक्तित्व के सर्वथा अनुरूप ही है। उनके व्यक्तित्व की ही भाँति उनकी भाषा भी बड़ी ही प्रभविष्णु एवम् शक्तिशालिनी हैं।

# 10. कबीर के साहित्य में पारिभाषिक शब्द

कबीर–काव्य में बहुत से ऐसे पारिभाषिक शब्दों का प्रयोग हुआ है जिनके कुछ विशेष अर्थ है परन्तु इन अर्थो को जाने बिना उनके काव्य का आनन्द प्राप्त नहीं किया जा सकता। इनमें से कुछ पारिभाषिक शब्द तो ऐसे है जिनके अर्थ बड़े गूढ़ है। ये प्रतीक रूप में प्रयुक्त हुए है। अक्सर उल्टबांसियों में इनका बहुत अधिक प्रयोग हुआ है। ये शब्द सिद्धों तथा नाथों के योग साहित्य में प्रयुक्त होते चले आ रहे थे। परन्तु कबीरदास ने सर्वथा नवीन तथा भिन्न–भिन्न अर्थो में इनका प्रयोग किया है लेकिन कबीर कभी–कभी ऐसे शब्दों का भिन्न–भिन्न रूपों में भी प्रयोग किया है। जिसके फलस्वरूप कहीं कहीं भ्रांति भी उत्पन्न हो जाती है। इसका परिणाम यह हुआ है कि उनमें सुदंर पद भी कभी–कभी नीरस एवं उलझे हुए प्रतीत होने लगते है। सामान्य पाठक व्यर्थ की माथा–पच्ची में पड़कर ऐसे पदों को पढ़ता ही नहीं। परन्तु यदि हम इन शब्दों के अर्थो को स्थल विशेष अथवा प्रसंग विशेष के अनुसार पढ़ते है तो यह हमें काफी समझ में आ जाते हैं। यहां कबीर द्वारा प्रयुक्त कुछ पारिभाषिक शब्दों के बारे में स्पष्टीकरण दिया जा रहा है। इन्हें पढ़ने से कबीर की वाणी को समझना और उसके रस को प्राप्त करना आसान हो जाएगा। फिर भी इन शब्दों को प्रसंग विशेष के आधार पर ही समझने का प्रयास करना चाहिए।

### क. शून्य

कबीर साहित्य में 'शून्य' शब्द का प्रयोग अनेक स्थलों पर हुआ है। 'विष्णु सहस्त्र' नाम के अनुसार 'शून्य' भगवान के अनेक नामों में से एक है स्वामी शंकराचार्य ने भी कहा है, "सर्वे विशेष साहित्यात शून्यवत शून्यम्।" गौडपादाचार्य ने भी अपनी 'माडूक्योयनिषद' की प्रसिद्ध करिकाओं में इस शब्द का प्रयोग इसी अर्थ में किया है। वेदांत दर्शन को इस शब्द को अखिल सत्ता का बोधक मानता हूँ यूं तो बौद्धों के साहित्य में इस शब्द का प्रयोग लंबे काल से होता चला आ रहा था लेकिन नागार्जुन के कारण 'शून्यवाद' के प्रचार को काफी बल प्राप्त हुआ। डॉ0 गोविन्द त्रिगुणायत ने कहा है, "हमारी समझ में इस शब्द का प्रयोग भगवान बुद्ध ने तत्व की अनिवर्चनीयता ही ध्वनित करने के लिए किया था।"

डॉ0 राजेश्वर चतुर्वेदी कहते हैं, "कबीरदास ने अपनी वाणी में शून्य का प्रयोग बहुत किया है। शून्य शब्द बहुत प्राचीन है इसका प्रयोग ब्रह्मण ग्रंथों, उपनिषदों, बौद्ध दर्शन और शंकराचार्य के वेदांत सूत्र के काव्य आदि में हुआ है।

नागार्जुन का कहना था कि शून्य को न तो 'शून्य' कह सकते है न उसे 'अशून्य' कह सकते है इसे 'शून्या शून्य' अथवा 'न शून्य' कहना भी उचित नहीं है। वह इन चारों से विलक्षण है

> शून्यमिति न वक्तव्यं अशून्यमिति वा भवेत्।
>
> उभयं नोभयं नैव प्रज्ञत्यर्थ तु कथ्यते।।

वज्रयानी सिद्धों ने इसे 'महासुख' भी कहां है यही नही यह केवलावस्था का द्योतक भी मान लिया गया था।

कालांतर में योगियो तथा नाथपंथियों के द्वारा इस शब्द के अर्थ में विस्तार किया गया पहले तो इसे देशकालातीत ब्रह्मवाचक शब्द समझा गया लेकिन बाद में इसे 'ब्रह्म रंध्र' कहा गया जो कि विचित्र स्थान का सूचक

है 'हठयोग प्रदीपिका' के आधार पर यह शब्द कभी 'सुषुम्ना नाड़ी और कभी 'अनाहत चक्र' के पर्याय के रूप में मान लिया गया है। गुरू गोरखनाथ के अनुयायियों ने इसके साथ नाद को भी जोड़ दिया। यह उनकी प्रसिद्ध सबदी से स्पष्ट होता है।

बसती न शून्यं शून्यं न बस्ती, अगम अगोचर ऐसा।

गगन सिषर महिं बालक बोलै ताका नां पार हुगे कैसा।।

वस्तुतः गुरु गौरखनाथ ने 'शून्य' के बारे में बताया तथा 'गगन मंडल' में सुनिद्वार कर इसका ध्यान निर्धारित किया। वे कहते भी है।

सुनि जा माई सुनि जा बाप। सुंनि निरंजन आपै आप।

सुनि के परचौ भया सथीर। निहचल जोगी गहर गंभीर।।

गौरखनाथ ने स्पष्ट किया है कि श्वोसोच्छवास के बीच केवल कुचक्र की क्रिया द्वारा दस द्वार तक पहुँचा जा सकता है।

अरध–उरध विचि धरई उठाई, मधि सुनि में बैठा जाई।।

उनका यह भी कहना है कि चंद्र और सूर्य का मिलन होते ही वहां पर अमृत का झरना प्रवाहित होने लगता है। इस प्रकार नाथ पंथियों के यहां 'शून्य शब्द' गगन के रूप में बदल गया तथा इस शब्द को व्यापकता प्राप्त हो गई। धीरे–धीरे ये शब्द अनेक अर्थों में प्रयुक्त होने लगा। उसे कहीं ब्रह्मरंध्र, कहीं ब्रह्म, कही सुषुम्ना नाडी, कहीं अनाहत चक्र और कहीं समाधि की अवस्था कहा गया है। कबीरदास स्वयं नाथ पंथियों से अत्यधिक प्रभावित थे। अतः उन्होंने इस शब्द का प्रयोग कहीं तो सुषुम्ना के लिए और कहीं ब्रह्मरुध्र के लिए किया है।

गंग जमुन उन अंतरै, सहज सुनि ल्यों घाट।

तहां कबीरा मठ रच्या, मुनजन जौवें बाट।।

ऐसा कोई ना मिलै, सब विधि देई बताय।

सुनि मंडल में पुरुष इक, ताहि रहै ल्यौ लाय।।

इस संबंध में डॉ0 हजारी प्रसाद द्विवेदी ने विस्तारपूर्वक विवेचन किया है वे लिखते है–

"कबीरदास ने 'शून्य' और 'सहज' से जिस प्रकार की समाधि की बात कही है वह योगियों की सहजावस्था से भिन्न है। वे उस संत को अपना सारा जप–तप दलाली से भेंट कर देने को तैयार थे। जो उन्हें सहज सुख के योग्य बना दे। उन्हें राम–रस की एक बूंद चखा दे। यह एक ही उनकी सहजावस्था का सुख है इस राम रस का आस्वादन उन्होंने सहज शून्य में किया था इसी राम रास से शिव सनकादि मत्त हो गए थे।"

आचार्य परशुराम चतुर्वेदी ने इस शब्द को जो विवेचन किया है वह पाठकों के लिए ध्यातव्य है।

1. कबीर की वाणी में 'शून्य' और 'गगन' दोनों ही पर्यायवाची शब्द प्रतीत होते हैं 'शून्य' प्रायः 'परमतत्व' की ओर संकेत करता हुआ प्रतीत होता है और गगन किसी विशेष (अपूर्व) स्थान की ओर संकेत करता है। उन्होंने एक पद में 'विवेक प्रलय' जैसा वर्णन किया है। जिस प्रकार सोने के अनेक आभूषण गलाए जाने पर पुनः सोना बन जाते है और जैसे नदी की तरंगों में मिलकर पानी एकाकार हो जाता है उसी प्रकार पांच तत्व भी एक दूसरे से मिलते जाऐंगे।

बहुरि हम काहै कूं आवहिंगे।

बिछुरे पंचतत्त की रचना, तब हम रामहि पावहिंगे।

पृथी का गुण जांणी सोण्या, पानी तेज मिलवहिंगे।

तेज पवन मिलि सबद मिलि, सहज समाधि लगावाहिंगे।

जैसे बहु कंचन के भूषण, में कहि गालि तबावहिंगे।।

ऐसै हम लोक वेद के बिछुरे, सुनिहि मांहि समावहिंगे।।

जैसे जलहि तरंग तरंगनी, ऐसे हम दिख लावहिंगे।।

कहे कबीर स्वामी सुख सागर हंसहि हंस मिलावहिंगे।।

2. जहां कहीं कबीरदास जी उस तत्त्व का ज्योति के रूप में वर्णन करते हैं वहां पर वे 'गगन' के साथ 'ज्योति' शब्द भी जोड़ देते हैं। इससे स्पष्ट होता है कि गगन के भीतर अनुभव की जाने वाली ज्योति है इस संबंध में उन्होंने गगन मंडल आसण किया। 'गगन मंडल घर कीजै' के साथ 'सुनि मंडल में धरो ध्यान' आदि का प्रयोग किया है 'आदि ग्रन्थ' में गगन को एक नगरी कहते है और शून्य को 'सुन्नि सिषर–गढ़' भी बतलाते हैं।

3. कबीरदास ने 'सहज शून्य' के रूप में शून्य को आदि तत्व माना है उन्होंने इस अपूर्व तरूवर का रूपक देकर भी समझाने का प्रयास किया है।

सहज सुनि इकु निरवा उपजी धरती जलहरू सोखिआ।

कहि कबीर हउ ताका सेवक, जिनि यह बिरवा देखिआ।।

4. एक अन्य स्थल पर इसे 'गंगा तथा यमुना का मध्यवर्ती लय का घाट' भी कहा है।

5. उन्होंने ऐसे मठ की ओर भी संकेत किया है जिसे वे चौथा पद कहते हैं।

6. 'सहज सुनि हो ने हरौ, गगन मंडल सिरि मौर' – कह कर वे सहज सुनि (शून्य) को परमतत्व या ब्रह्म का पद कहते है जो सहस्त्रार स्थित ब्रह्मरूध्र में विद्यमान है अन्त में आचार्य परशुराम चतुर्वेदी के ही शब्दों में। "फिर भी जान पड़ता है कि लोगों में इस 'शून्य' के महत्व का दुरूप्रयोग करना आरम्भ कर दिया। इसे देवलोक जैसा समझा जाने लगा तो इसके प्रति वैसी श्रद्धा नहीं रह गई है और केवल 'शून्य' की भक्ति की निःसारता दिखलाने के लिए कबीर–बीजक में कहा गया है।

मनमथ मरै न जीवै, जीवहिं मरन न होय।

सुन्य स्नेही राम बिनु, चलै अपनपौ खोय।।

## निरंजन

निरंजन शब्द भारतीय दर्शन शास्त्र तथा योगपरक साहित्य में अनेक बार प्रयुक्त हुआ है। हिंदी साहित्य के भक्ति–साहित्य विशेषकर, कबीर साहित्य में इसका प्रयोग अनेक स्थलों पर मिलता है। इसका शाब्दिक अर्थ है – अंजन रहित। लेकिन 'अंजन' शब्द के बारे में अलग–अलग व्याख्याएं मिलती है। इस संबंध में डॉ0 सरनाम सिंह ने लिखा है, "निरंजन शब्द का तात्पर्य अंजन रहित है अंजन का अर्थ विद्वानों ने अनेक प्रकार से किया है कोई अंजन

का अर्थ माया करता है, कोई विचार या कलुष करता है किंतु इन अर्थो से निरंजन शब्द पर कोई प्रभाव नहीं पड़ता। प्रत्येक दशा में उसका अर्थ निर्लोप या 'निर्विकार' हो सकता है। भारतीय दर्शन इस शब्द से भली भाँति परिचित है और यह निर्गुण ब्रह्म का वाचक हैकबीर साहब का कहना है कि इस दृश्यमान जगत में हमें जो कुछ दिखाई देता है, वह सब अंजन है। निरंजन इससे सर्वथा अलग है उनका यह तो यह कहना है कि ऊँकार से लेकर सारी सृष्टि, ब्रह्म आदि देवता, वेद, पुराण, भक्तिभाव, दान–पुण्य आदि सभी अंजन के अंतर्गत समाहित होते हैं।

राम निरंजन न्यारा रे, अंजन सकल पसारा रे।।

अंजन उतपित वो उंकार, अंजन मांड्या सब बिस्तार।

अंजन ब्रह्मा शंकर ईद, अंजन गोपी संगि वोब्यंद।।

अंजन वाणी अंजन वेद, अंजन कीया नाना भेद।

अंजन विद्या पाठ पुरान, अंजन फोकट कथाहिं गियानां।।

कबीरदास ने निरंजन को ही एकमात्र सार तत्व कहा है और उसे जान कर विचार करने की सलाह दी है–

अंजन अलप निरंजन सार, यहै चीन्हि न करहुं विचार।

अंजन उतपति बरतनि लोई, बिना निरंजन मुक्ति न होई।।

निरंजन शब्द का प्रयोग अनेक अर्थों में मिलता है। यह निर्गुण ब्रह्म का वाचक है, ता कभी–कभी इसका प्रयोग रूढ़िवाचक संज्ञा के रूप में भी मिलता है। वहां यह वर्ग विशेष (संप्रदाय) का इष्टदेव है। राजस्थान एवं उड़ीसा में इसी आधार पर 'निरंजनी संप्रदाय' चलते रहे हैं। इस संप्रदाय के उपासक 'निरंजन' को अपना आराध्य मानते हैं। 'हठयोग प्रदीपिका में इसका प्रयोग शून्य, परमपद, समाधि तथा निर्गुण चैतन्य के लिए हुआ है। सिद्धों के साहित्य में इस शब्द के प्रयोग पर उनकी 'शून्य' संबंधी धारणाओं का अत्यधिक प्रभाव देखा जा सकता है। बौद्धों, सिद्धों ने सहजपन, बुद्ध अथवा सभी कुछ को निरंजन कहा था। जैन मुनि राम सिंह ने निरंजन शब्द को शिव, आत्म आदि का वाचक कहा है। बंगाल के धर्म–संप्रदाय में निरंजन को धर्मराज कहा गया है। नाथों के यहां निरंजन नाथ पद का पर्यायवाची बन गया। गोरखनाथ ने निरंजन को 'सर्वव्यापक सुषमन अस्थूल' कहा है। वे उसे 'पिता बोलिये निरंजन निराकार', 'सुनि निरंजन आपै आप' आदि शब्दों से संबोधित करते हैं।

मछिंद्र प्रसादै जती गोरष बोल्या, निरंजन सिधि नैं भानं।।

इस प्रकार नाथपंथ में निरंजन शब्द ब्रह्म रंध्र या ब्रह्मरंध्र में स्थित नादरूपी निर्गुण ब्रह्म का बोधक माना गया था। पशुपतिनाथ शैव–संप्रदाय में भी इस शब्द का प्रयोग होता था।

कबीरदास ने 'निरंजन' शब्द का प्रयोग करते समय नाथपंथ और भारतीय दर्शन शास्त्र की मान्यताओं का ही अनुसरण किया है। वे 'निरंजन' को राम की भांति मानते हैं। उनका यह भी कहना है कि 'महारस' की अनुभूति के लिए निरंजन जानना आवश्यक है। उन्होंने निरंजन को एकमात्र सार तत्व कहा है। उन्होंने निरंजन शब्द का प्रयोग परम तत्व के लिए किया है। साथ ही उस के निर्गुण निराकार होने की ओर भी संकेत किया है। वे कहते भी हैं

गोब्यंदे तूं निरंजन तू निरंजन तू निरंजन राया।

तेरे रूप नाहीं रेख नाहीं मुद्रा नाहीं माया।

यही नहीं वे उसे अनादि और अनिर्वचनीय भी कहते हैं। वे उसे अलह का सूचक भी कहते हैं।

एक निरंजन अलह मेरा, हिंदू तुरक दुहू नहीं नेरा।

राखूं व्रत न मरहम जांना, तिसही सुमिरूं जो रहै निदांना।

पूजा करूं न निमाज गुजारू, एक निराकार हिरदै नमसकारूं।।

न हज जांउ न तीरथ पूजा, एक पिछांणा तौ का दूजा।

कहै कबीर मरम सब भागा, एक निरंजन सूं मन लागा।।

एक अन्य साखी में वे कहते हैं कि मेरा मन उन्मत्त (परमतत्व) में लग गया है। मैंने उस 'निरंजनराई' को बिना चंद्रमा के फैली हुई चांदनी में देखा है

मन लागा उनमन्न सों, गगनें पहुंचा जाइ।

देख्या चंद बिहूणां, तहां अलख निरंजन राइ।।

वे निरंजन को अलख कहते हैं तो अलह या राम भी कहते हैं। डॉ. गोविंद त्रिगुणायत का मत है कि ''कबीर ने निरंजन शब्द का प्रयोग उस अर्थ में कभी नहीं किया था जिस अर्थ और रूप में वह कबीर पंथियों में मान्य है, उन्हें हम कबीर की प्रामाणिक रचनाएं नहीं मानते। 'कबीर ग्रंथावली' और 'संत कबीर' में ढूंढ़ने पर एक भी ऐसा स्थान नहीं मिलता जहां उन्होंने निरंजन का प्रयोग उसी अर्थ में किया हो जिसमें वह कबीर पंथ में प्रचलित है।''

डॉ. गोविंद त्रिगुणायत को यह इसलिए कहना पड़ा क्योंकि कबीर पंथी 'निरंजन' का प्रयोग हेय अर्थ में करने लगे थे। परन्तु कबीर ने निरंजन शब्द का बार–बार प्रयोग ब्रह्म के अर्थ में ही किया है। उसी अर्थ में वे राम और हरि शब्दों का भी प्रयोग करते हैं। निरंजन ही निर्गुण ब्रह्म है।

लेकिन एक स्थल पर वे निरंजन को 'मन' का विशेषण भी कहते हैं। उस मन के बारे में उनका कहना है कि उसे तो सनक, जयदेव, नामदेव जैसे बड़े–बड़े भक्त भी नहीं जान पाए। मन की गति का परिचय शिव, ब्रह्मा, नारद जैसे ज्ञानियों को भी नहीं हो सका। यहां तक कि भक्त ध्रुव, प्रह्लाद विभीषण आदि इसके भेद को नहीं जान सके।

ता मन कौं खडोजहु के भाई, तन छूटे मन कहां समाई।

सनक सनंदन जै देवनामी भगति कही मन उनहुं न जानी।

सिवबिरंचि नारदमुनि ग्यानी, मन की गति उनहूं न जानी।।

गोरष भरथरी गोपी चंदा, ता तन सौं मिलि करै अनंदा।

अकल निरंजन सकल सरीरा, ता तन सौं मिलि रहा कबीरा।।

संक्षेप में कबीरदास ने निरंजन का प्रयोग मूलतः उस निर्गुण निराकार ब्रह्म के लिए किया है जो अलख, अभेद, अविगत, आनंददाता तथा सर्वव्यापक है। उसके बिना मानव को मुक्ति नहीं मिल सकती।

**नाद और बिंदु–** नाद तथा बिंदु की कल्पना योगियों द्वारा सृष्टि की उत्पत्ति के संदर्भ में प्राचीनकाल से चली आ रही है।

(i) 'नाद' 'शब्द' का पर्यायवाची है। यह वह तत्व है जिसके द्वारा अव्यक्त व्यक्त रूप में प्रकट हुआ। यही नाद मानव शरीर में व्यष्टि रूप में विद्यमान है। योगी साधना द्वारा उसकी अनुभूति प्राप्त करते हैं। इसी नाद से ज्योति उत्पन्न होती है। यह नाद मानव शरीर में परम तत्व का प्रतिनिधित्व करता है तथा इसे 'शिव' की संज्ञा भी दी गई है।

(ii) 'बिंदु' उस शक्ति का परिचायक है जो शिव से मिलकर सार्थक होती है। योगी जन कभी इसे जीव तत्व भी कहते हैं। पुनः वे इसे जीव–शक्ति के रूप में 'वीर्य' का पर्याय भी कहते हैं। ब्रह्मचर्य की एक अन्य साधना का नाम बिंदु की साधना है। जहां वज्रयानी बौद्ध सिद्धों ने इस प्रकार की साधना की अपेक्षा की वहां गुरु गोरखनाथ और उनके अनुयायियों ने काया साधना की दृष्टि से इसे पुनः महत्व प्रदान किया।

डॉ. हजारी प्रसाद द्विवेदी ने नाद और बिंदु के बारे में गंभीरतापूर्वक विवेचन किया है। उन्होंने इन शब्दों के दार्शनिक तथा सैद्धांतिक दोनों पक्षों पर प्रकाश डाला है

(क) नाद से दो प्रकार की सृष्टि उत्पन्न हुई– नाद–रूपा तथा बिंदु–रूपा।

(ख) नाद रूपा सृष्टि शिव्यक्रम से आगे बढ़ती है लेकिन बिंदु–रूपा सृष्टि संतान के रूप में आगे बढ़ती है।

(ग) नाद से नव नाथ (गोरखनाथ आदि) जन्मे और बिंदु से सदाशिव भैरव। नाद स पहले सूक्ष्म रूपिणी और बाद में स्थूल रूपिणी सृष्टि उत्पन्न हुई।

(घ) सूक्ष्म रूपिणी सृष्टि है– प्रणव, महागायत्री, और योग शास्त्र। स्थूल रूपिणी सृष्टि है– ब्रह्म गायत्री और वेदत्रयी।

आचार्य परशुराम शास्त्री ने भी नाद और बिंदु के बारे में पर्याप्त विवेचन किया है

(i) गोरखनाथ ने नाद में लय प्राप्त करने की चर्चा की है। यह किसी बिरले को ही प्राप्त होती है। जिसे प्राप्त होती है वह सिद्ध हो जाता है।

नाद नाद सब कोई कहौ। नादहि ले कोउ बिरला रहै।।

नाद बिंद है फीका सिला। जिहि साध्या ते सिधैं मिला।

(ii) बिंदु के बारे में भी गोरखनाथ का यही कथन है कि कोई बिरला ही इसे सिद्ध करता है, क्योंकि ऐसी साधना के लिए आध्यात्मिक अनुभूति का होना अनिवार्य है।

ब्यंद ब्यद सब कोइ कहै। यहा व्यंद कोई बिरला लहै।।

इह ब्यंद भरौसे लावै बंध। असिथिर होत न देखो कंध।।

उपर्युक्त कथन में वे 'महा बिंदु' को परमब्रह्म मान लेते हैं।

(iii) कबीर ने बिंदु को उत्पत्ति का मूल कारण स्वीकार किया है

जो पै करतना बरण बिचारै तो जनमत तीनि डांडि कि न सौरे।

उत्पति ब्यंद कहां थै आया, जो धरी अरू लागी माया।।

(iv) एक अन्य पद में वे कहते हैं कि वह 'काजी' जन्म और मृत्यु से मुक्त हो जाता है जो बिंदु का क्षरण स्वप्न में भी नहीं होने देता।

(v) जब उन्होंने 'नाद' और बिंदु का एक साथ प्रयोग किया है तब यह प्रतीत होता है कि ये दोनों सृष्टि के उपादान कारण हैं।

नाद नाही ब्यंद नाही, काल नाही काया।

जब तैं जल ब्यंद न होते, तब तू ही राम राया

(vi) कबीरदास ने नाथ पंथियों की तरह नाद और बिंदु के मिलन की साधना का भी वर्णन किया है। उनका कहना है कि जब नाद में बिंदु लय हो जाता है तभी गगन के अंतराल में अनहद नाद सुनाई देने लगता है।

अवधू नार्दै गगन गाजै, सबद अनाहद बोलै।

अंतरि गति नहीं देखै नेड़ा, ढूंढ़त वन वन डौले।।

(vii) कबीरदास का तो स्पष्ट कहना है कि चाहे नाद में बिंदु मिले या बिंदु में नाद, दोनों के मिलन से ही परम तत्व की अनुभूति होती है।

नाद हि ब्यंद कि ब्यंदहि नाद नादहि ब्यंद मिले गोब्यंद।।

अंत में डॉ. गोविंद त्रिगुणायत का मत विवेचनीय है। वे लिखते हैं कि कबीर ने नाद–बिदु का गोरख के अर्थ में प्रयोग करते हुए भी इस साधना को गौण माना हैनाद–बिंदु शब्दों का प्रयोग कबीर ने भी किया है। इन शब्दों को प्रायः उन्हीं अथों में ग्रहण करते थे जिन अर्थों में गोरखनाथ जी करते थे। बिंदु साधना उन्हें भी मान्य थी किंतु इसे वे उपासना मात्र मानते थे साध्य नहीं। उनकी मूल साधना तो भगवद्–भक्ति थी। इस बात को उन्होंने इस रूपक से स्पष्ट करने की चेष्टा की है

नाद ब्यंद की नावरी, राम नाम कनिहार।

कहै कबीर गुण गाहले, गुरु गयि उतरौं पार।।

**सहज**– कबीर के साहित्य में 'सहज' शब्द का प्रचुर प्रयोग मिलता है। इस शब्द का प्रयोग योग साहित्य और सिद्ध साहित्य में भी हुआ है। कुछ विद्वानों का विचार है कि 'सहज' शब्द चीनी शब्द 'ताओ' का संस्कृत रूपांतर है। 'ताओ' चीन का एक प्रसिद्ध संप्रदाय था जो 'ताओइजम' के नाम से प्रसिद्ध है। इसके प्रचारक का नाम लाओज है जो महात्मा बुद्ध का समकालीन था। ऐसा भी कहा जाता है कि ईसा की 7वीं शताब्दी में असम के किसी राजा ने इस संप्रदाय के एक ग्रंथ का संस्कृत में अनुवाद भी करवाया था। 'ताओ' शब्द 'स्वाभाविक प्रवृत्ति मूलक मार्ग' के लिए प्रयुक्त होता है। यह सिद्धों की 'सहज' संबंधी धारणा से मिलता–जुलता है। परंतु प्रामाणिक रूप से यह नहीं कहा जा सकता कि भारतीय 'सहज' शब्द ताओ से प्रभावित है।

विष्णु पुराण (400 ई0) में 'सहज' शब्द का प्रयोग इसी अर्थ में हुआ है। लेकिन इतना तो कहा जा सकता है कि सिद्धों के साहित्य में यह शब्द बहुत अधिक प्रयुक्त हुआ है। सिद्धों ने इस शब्द का प्रयोग दो रूपों में किया है

(क) स्वाभाविकता (स्वाभाविक आचरण)

(ख) एक प्रकार की साधना

अथर्ववेद में व्रात्यों की चर्चा करते समय स्वाभाविक आचरण के अर्थ में इस शब्द का प्रयोग किया है। बौद्ध–सिद्धों तथा शैव योगियों ने भी इस शब्द का प्रयोग 'स्वाभाविक प्रवृत्ति मूलक मार्ग' के रूप में किया है। पुनः उन्होंने इसका प्रयोग साधना के रूप में किया है जिसमें प्रज्ञा तथा उपाय और शिव–शक्ति के मिलन की कल्पना की गई है। सिद्धों ने 'सहज तत्व' में शून्य धारणा को भी माना है। पुनः सिद्धों के लिए 'सहज तत्व' भाव–अभाव से परे है। यह उदाहरण दृष्टव्य है।

सहज छड्डि जे णिण्वाण भाविउ।

परमत्थ एक्क ते साहिउ।।

कबीरदास ने 'सहज' शब्द तथा इससे संबंधित शब्दों का अनेक स्थलों पर प्रयोग किया है। इस संबंध में वे अक्सर नाथों और सिद्धों का ही अनुसरण करते हुए दृष्टिगोचर होते हैं। फिर भी उन्होंने अपने मौलिक दृष्टिकोण का कहीं पर भी त्याग नहीं किया। सिद्धों के सहज तत्व को कबीरदास ने अनिर्वचनीय निर्गुण तत्व के समान माना लेकिन उन्होंने उसमें ज्ञान की अपेक्षा भक्ति का पुट जोड़ दिया। इस प्रकार उन्होंने इसे साधकों के लिए अधिक उपयोगी बना दिया। कबीरदास ने 'सहज' का अर्थ स्वाभाविक ही माना है। इसीलिए वे 'सहजि', 'सहजै', तथा 'स्वाभाविक' आदि शब्दों का प्रयोग करते हैं। 'सहज' परमतत्व कहते समय वे उसके ज्ञान पक्ष की अवहेलना नहीं करते। उनका तो स्पष्ट कहना है कि आत्मचिंतन करने से पूर्व सहज के ज्ञान को जानना आवश्यक है। लेकिन साथ ही वे यह भी कहते हैं कि सहज तत्व का निरंतर ज्ञान प्राप्त करने वाले योगी बिरले होते हैं–

अपने विचारि असवारी कीजै, सहज के पाइडे पाव जब दीजे।

दै मुहरा लगांम पहिराऊ, सिकली जीन गगन दौराऊ।।

कबीरदास सहज तत्व को समझने के पश्चात ही राम का भजन करते हैं। 'सहज धुनि' शब्दों का प्रयोग वे अनहद नाद के लिए करते हैं। 'सहज–बेलि' शब्द का प्रयोग वे माया के विविध व्यापारों के लिए करते हैं। 'सहज रूप' का प्रयोग वे हरि के विशेषण के रूप में करते हैं।

सहज बेलि जल फूलण लागी, डाली कूयल मेल्ही।

बेलड़िया द्वै अणीं पहुंती गगन पहूंती सैली।।

अब मैं पाइवो रे पाइबो ब्रह्मगियान।

सहज समाधे सुख में रहिबो कोटि कलप विश्राम।।

वे 'सहज सुनि' शब्द का प्रयोग भी सप्रयोजन करते हैं। यह एक ऐसी स्थिति है जहां पहुंच कर साधक को सुख की पुष्टि होती है। इसकी वास्तविक स्थिति गंगा–यमुना के मध्य है तथा यह गगन मंडल के शीर्ष स्थान पर विद्यमान है।

सहज सुनि को नेहरो गगन मंडल सिरमौर।

दोऊ कुल हम आगरी, जो हम झूलै हिंडोल।।

अरध उरध गंगा यमुना, मूल कवलकी घाट।

घट चक्र की गागरी, त्रिवेणी संगम वाट।।

अंत में कबीरदास जी सहज शब्द के साथ भाइ (भाव) जोड़ कर उसे स्वभावतः के अर्थ में प्रयोग करते हैं। 'सहज शील' शब्द का प्रयोग करते समय वे सहज आचरण की चर्चा करते हैं। इस प्रकार हम देखते हैं कि कबीरदास विभिन्न अर्थों में सहज शब्द का प्रयोग करते हुए 'सहज योग' का समर्थन करते हुए प्रतीत होते हैं। वे कहते भी हैं

राम नाम सहजै ल्यों लाई।

**खसम** – डॉ. सरनाम सिंह के अनुसार 'कबीर ग्रंथावली' में 'खसम' शब्द का प्रयोग 26 स्थानों पर हुआ है। इस का अर्थ है– पति, स्वामी, ब्रह्म या परमात्मा। आचार्य परशुराम चतुर्वेदी के अनुसार 'खसम' शब्द का सर्वप्रथम प्रयोग सिद्ध साहित्य में मिलता है। वे इसका अर्थ करते हैं– ख = आकाश, शून्य. सम = समाना अर्थात शून्य के

समान। कुछ ऐसा ही प्रयोग संस्कृत साहित्य में भी मिलता है– आकाशवत् सर्वगतश्य पूर्णः। लेकिन खसम शब्द का प्रयोग नहीं मिलता। सिद्ध साहित्य में 'खसम' शब्द का प्रयोग पति के लिए भी किया गया है।

डॉ. हजारी प्रसाद द्विवेदी के अनुसार– ''जब यह शब्द कबीरदास तक पहुंचा तब तक उससे मिलता–जलता एक अरबी शब्द खसम (पति) भारतवर्ष की सीमा में पहुँच चुका था। अतएव कबीरदास को यह शब्द दो मूलों से प्राप्त हुआ। हठयोगियों के मध्य यह आत्मा के शून्य चक्र में पहुंचकर समभाव की अवस्था को प्राप्त होने के अर्थ में आया और मुसलमानी माध्यम से पति के अर्थ में। फिर भी सिद्धों का खसम कबीर का खसम (ब्रह्म) बन गया।''

कबीरदास द्वारा खसम शब्द अरबी भाषा से गृहीत प्रतीत होता है। वे इस शब्द का प्रयोग प्रायः पति के लिए ही करते हैं। लेकिन यहां पति का अर्थ परमात्मा है।

एक सुहागिन जगत पियारी, सकल जीव जंत की नारी।

खसम करै वा नारि न रौवै, उसका रखवाला और होवे।

अन्यत्र व जीव को उपदेश देते हए कहते हैं कि उसे खसम के प्रति उत्तरदायी बनना चाहिए, क्योंकि वही परमतत्व (खसम) ही सब कुछ है।

सायर उतरो पंथ संवारौ, बुरा न किसी का करणां।

कहे कबीर सुनहु रे संतौ, ज्वाब खसम कू भरणां।।

एक अन्य पद में वे कहते हैं

खसमहि जाणि खिमा करि गहै।

तो होइ निरवऔ अखै पद लहै।

जो साधक अपने खसम (परमतत्व) को पहचान कर क्षमा धारण करता है वही परम पद (मोक्ष) को प्राप्त करता है। यही नहीं अन्यत्र वे खसम शब्द का प्रयोग 'जीव' के लिए प्रयुक्त करते हैं।

भाई रे चूंन बिलूरा खाई।

बाघनि संगि भई सब हिनके, खसम न भेद लहाई।।

सब घर घोरि बिलूटा खायौ, कोई न जानै भेव।

खसम निपूरौ आगणि सूता, रांड न देई लेव।

अर्थात हे भाई! मन विकार ग्रस्त है लेकिन जीव इस बात को नहीं जान पाया कि शरीर सब के लिए हानिकारक है। अज्ञानी जीव अभी भी अचेत पड़ा है।....यहां बिलूरा शब्द विकृत मन के लिए प्रयुक्त हुआ है।

इस प्रकार कबीर साहित्य में 'खसम' शब्द स्वामी तथा परमात्मा के अर्थ में प्रयुक्त हुआ है। लेकिन अन्यत्र वे इस शब्द का प्रयोग 'जीव' तथा 'मन' के अर्थ में भी करते हैं। डॉ. गोविंद त्रिगुणायत लिखते भी हैं– ''कबीर ने इस शब्द का प्रयोग प्रायः दो अर्थों में किया. है – एक तो परमात्मा परब्रह्म के अर्थ में और दूसरा मन के अर्थ में।''

**(क) परमात्मा के अर्थ में**

खसमै जाणि खिमाकर रहै, तब होय निबओ आवै पद लहै।

(ख) मन के अर्थ में– कहीं–कहीं वे इस शब्द का प्रयोग 'मन' के अर्थ में भी करते हैं। यथा

खसम मरै तौ नार न रौवै, उस रखवारा और होवै।।

खवारे का होय विनास, आगे नरक ईहा भोग विलास।।

यहां माया का वर्णन है। वह मन रूपी खसम के नष्ट हो जाने पर बुद्धि, चित्त आदि में लिप्त हो जाती है।

**(ग) जीव के अर्थ में**– कहीं–कहीं पर कबीर 'खसम' शब्द का प्रयोग जीव के अर्थ में भी करते हैं इसका उदाहरण पहले ही दिया जा चुका है। इस प्रकार खसम शब्द का प्रयोग विकृष्ट पति, मन, जीव तथा परमात्मा के अर्थों मंन हुआ है। परंतु यह भी सत्य है कि मूलतः यह शब्द फारसी भाषा का ही है। एक उदाहरण देखिए

भाई मैं दूनों कुल उजियारी।

बाहर खसम नैहर खायौ, सोरह खायौ ससुरारी।

**उन्मनि**– कबीरदास ने बार–बार अपनी रचनाओं में 'उन्मनि' की चर्चा की है। इस शब्द में उन्होंने जगत की उदासीनता का अर्थ भर दिया है। इसका सामान्य अर्थ हैनिरासक्त अवस्था।

हंसे न बोलै उन्मनी, चंचल मेल्हा मारि।

तदनुसार मन की जागृत अवस्था बहिर्मुखी है किंतु उन्मन अवस्था में मन अंतर्मुख हो जाता है कबीरदास जी कहते भी हैं

बाहर खोजत जनम गंवाया।

उन्मनी ध्यान घट भीतर आया।

साधन संबंधी ग्रंथों में 'उन्मनि' शब्द के लिए 'मनोन्मनी' शब्द का प्रयोग मिलता है।

(i) 'हठयोग प्रदीपिका' में इसे समाधि का पर्यायवाची माना गया है। आचार्य परशुराम के शब्दों में– ''यह शब्द उस अवस्था की ओर निर्देश करता है, जब मन तथा प्राण दोनों एक हो जाते हैं। इसके फलस्वरूप मन में स्थिरता आ जाती है। मन को कभी ग्यारहवी इन्द्रिय भी कहा जाता है और इसे उनका राजा होना भी बतलाया गया है। अतएव मन के ऊपर अपना शासन करने वाला साधक अपनी सभी इंद्रियों को स्वभावतः अपने वश में कर लेता है। बौद्ध सिद्धों ने तो सविषय मन को ही जगत की संज्ञा दी थी। इसी प्रकार निर्विषय हुए मन को निर्वाण या सहज दशा में पहुंचा हुआ और मुक्त ठहराया था।'' ज्ञान बोध में कहा भी गया है

चित्तमेव महाबीजं भव निर्वाणयोरपि।

संपृक्तौ संसृतिं याति निर्वाणेति स्वभावताम्।।

(ii) मन के महत्व को गुरु गोरखनाथ ने भी समझा। 'गोरखबाणी' से पता चलता है कि प्राणों को नियंत्रित करके उन्हें अपने वश में करने पर यह स्थिति उत्पन्न होती हैं। उस समय ब्रह्मरंध्र में बिना सूर्य या चंद्रमा के प्रकाश होता है तथा अनहद नाद सुनाई देने लगता है।

(iii) कबीरदास ने उनमनी का प्रयोग ध्यान द्वारा समाधि की एक दशा जैसा किया है। लेकिन उन्होंने अन्यत्र उसका प्रयोग विशेषण के रूप में भी किया है।

(iv) पुनः उन्होंने 'उनमन' 'उनमन्न' शब्दों द्वारा उस परमतत्व की ओर भी संकेत किया है।

मन का भ्रम मन ही थें भागा, सहज रूप हरि खेलण लागा।

मैं तें तैं ए ऋ नाहीं, आपै अकल सकल घट मांही।

जब थें इनमन उनमन जांना, तबरूप न रेष तहां ले बांनां।।

तन मन मन तन एक समांना, इन अनमै मा, मनमांना।।

आतम लीन अषंडित रामां, कहै कबीर हरि मांहि समांना।।

लेकिन यहां पर यह भी हो सकता है कि कवि ने मन से उन जोड़ दिया हो। परंतु अन्यत्र कवि ने यह भी कहा है कि जब तक हम अपने मन को पूर्णतः समर्पित नहीं कर देते तब तक हमें उस मन की उपलब्धि नहीं हो पाती। हमारी आस्था 'उनमन' के प्रति वैसी ही होनी चाहिए जैसी अंडे की होती है। जिसे अनल पक्षी आकाश में देता है जिस में बच्चा जमीन पर गिरने से पूर्व निकल कर फिर आकाश की ओर जाता है।

मन दीयां मन पाइए, मन बिन मन नहीं होई।

मन उनमन उस अंड ज्यूं, अनल अकासां जोई।।

(v) संत नामदेव ने भले ही 'उनमनि' शब्द का प्रयोग न किया हो लेकिन उन्होंने भी अपने मित्र त्रिलोचन को संबोधित करते हुआ कहा है– जैसे मां छोटे बच्चे को पालने में लिटा कर काम में लगी हुई भी अपना मन बच्चे में लगाए रहती है, उसी तरह हमारा मन राम नाम में लगा रहना चाहिए।

(vi) कबीरदास ने भी ऐसे ही भाव व्यक्त करने के लिए 'मन', 'उनमन', 'उन्मुनि' तथा 'उनमन्न' आदि शब्दों का प्रयोग किया है।

(vii) डॉ. हजारी प्रसाद द्विवेदी का यह अर्थ सही प्रतीत होता है कि उस 'उन्मनि' शब्द में इसका एक अर्थ 'उनका मन' कर लेने पर कोई आत्म–समर्पण की ध्वनि निकलती है। यथा– मन लागा उनमन्न सौ।

**अजपा जाप**– 'अजपा जाप' कबीर वाणी का एक महत्वपूर्ण पारिभाषिक शब्द है। यह शब्द सहज नाम–स्मरण के लिए प्रयुक्त होता है। आचार्य परशुराम शास्त्री ने उचित ही लिखा है– "अजपा–जाप को कभी–कभी सहज जाप भी कहते हैं। यह नाम–स्मरण की उस पद्धति के लिए प्रयुक्त होता है जिसमें सभी प्रकार के बाह्य साधन जैसे स्पष्ट नामोचारण, माला का फेरना, अंगुलियों पर नामों का गिनना आदि छोड़ दिये जाते हैं और जिसकी अंतःक्रिया आप–से–आप होती चलती है।'' प्रो. भारत भूषण ने इस शब्द का अर्थ स्पष्ट करते हुए कहा है– ''अजपा जाप को सहज जाप कहा गया है। इस प्रकार के जाप में यह बात ध्यान देने की है कि किसी प्रकार के बीजाक्षर को अथवा भगवान को इस प्रकार उच्चारण नहीं किया जाता या उच्चारण किया जाए, माला फेरी जाए या गणना की जाए। वरन ऐसा स्वभाव बना लेना पड़ता है कि स्वतः ही मन, वाणी और इंद्रियां ऐसी अभ्यस्त हो जाएं कि उसका स्मरण अपने आप प्रत्येक श्वास की गति के साथ–साथ होता जाए।'' इस प्रकार के जाप का कथन बौद्ध–सिद्धों की साधना पद्धति में आता है। वे लोग श्वासों को निरुद्ध करके चंडाग्नि को प्रज्ज्वलित करते थे और किसी बीजाक्षर का ध्यान करके ऐसा अभ्यास करते थे कि वही बीजाक्षर प्रत्येक श्वास के साथ निकले। इसे वज्रपात की संज्ञा भी दी गई थी। नाम संप्रदाय वालों ने इसी को अजपा जाप के नाम से पुकारना शुरू कर दिया। बौद्धों ने बीजाक्षर 'एवं' को रखा था और नाथों ने उसकी जगह बीजाक्षर 'सोऽहम्' को रखा था। कबीरदास ने 'सोऽहम' शब्द को अपनाने के साथ–साथ 'राम' शब्द की ओर विशेष ध्यान दिया। यह उनकी निजी विशेषता है।

"निर्गुण राम निर्गुण राम जपहु रे भाई।''

वस्तुतः अजपा जाप का लक्ष्य नाम–स्मरण द्वारा सिद्धि प्राप्त करना है। वैष्णव भक्त भी नाम स्मरण द्वारा अपने इष्टदेव के सान्निध्य को पाना चाहते थे। योगियों का जप–विधान तथा बौद्ध तांत्रिकों के व्रज जाप का लक्ष्य

भी यही था। इसी अजपा जाप के द्वारा योगी लोग तथा अन्य साधक शिव तथा शक्ति के सम्मिलन को अनुभव कर सके। इसी के द्वारा बड़े–बड़े मंत्रों को 'सोखहम' तथा 'एवं' का बीजाक्षार रूप दिया गया। गुरु गोरखनाथ के साथ–साथ कबीरदास ने भी इसी प्रकार के नाम–स्मरण पर बल दिया। श्वास–प्रश्वास की अजपा जाप पद्धति से कबीर भी पूर्णतयः परिचित थे। परंतु वे सिद्धों और नाथों की पद्धति से अलग अंतर्मुखी प्रक्रिया की बात करते हैं। वे 'सुरति' शब्द पर आधारित अजपा जाप पर बल देते हैं। इसका अर्थ है– मन योग शब्द से करना। बिना उच्चारण किए हुए श्वास–प्रश्वास के साथ राम सुमिरन करना ही कबीर का अजपा जाप है। लेकिन द्विवेदी जी ने सुमिरन और जाप में अंतर माना है। उनके अनुसार– ''सुमिरन नाम के साथ नामों के गुणों का स्मरण भी है। वह सूक्ष्म विद्रूप की उपलब्धि है। वह मंत्र चैतन्य का ही नामांतर है।'' इस प्रकार कबीरदास के अजपा जाप का मतलब है– मन–संयोगपूर्वक की गई शब्द साधना। इस साधना में शरीर का प्रत्येक रोम प्रियतम (प्रभु) का स्मरण कर उठता है। वे कहते भी हैं

रोम रोम पिउ पिउ करै, मुख की सरधा नाहि।

इस प्रकार साधक का मन राम का स्मरण करते–करते सममय हो जाता है और अंततः साधक और साध्य का भेद भी नष्ट हो जाता है। अहं भाव के विगलन की स्थिति का वर्णन करते हुए ही कबीरदास कहते हैं

तूं तूं करता तूं भया, मुझ में रही न हूं।
वारी फेरि बलि गई, जित देखू तित तूं।।

इसीलिए तो कबीरदास जप–माला तिलक आदि में विश्वास नहीं करते थे। वे तो दिन–रात सुरति के पक्षधर थे। रामनाम में निरंतर मन लगाए रखना ही कबीरदास का अजपा जाप है। प्रेमपूर्वक राम नाम–स्मरण से शब्द–अशब्द में विलीन हो जाता है। इसी अजपा जाप से ही कुंडलिनी जागृत होती है। अतः कबीरदास जी कहते हैं–

गन–गां गुन ना कटै, रटै न राम वियोग।
अह निसि हरि ध्यावै नहीं, क्यों पावै दुर्लभ योग।

**सुरति–निरति**– 'सुरति' शब्द सु उपसर्ग पूर्वक रम् धातु से व्युत्पन्न है। रम् धातु के दो अर्थ है– (i) रमण करना तथा (ii) रुक जाना अतः इसका अर्थ हुआ– सुतराम् रति पर अर्थात् किसी विषय में इतना अधिक आनंद प्राप्त करना कि जिससे चित्त (मन) की चंचलता समाप्त हो जाए अर्थात चित्त वहीं रुक जाए। इसका सही अर्थ है– संभोग (रति) के समय प्राप्त आनंद। वज्रयानियों ने इसी अर्थ में इस शब्द का प्रयोग किया है। परंतु संतों ने इसे आध्यात्मिक अर्थ प्रदान कर दिया। अर्थात आराध्य के स्मरण से ईश्वरीय आनंद को प्राप्त करना।

इसी प्रकार से 'निरति' शब्द नि उपसर्ग पूर्वक रम् धातु से निष्पन्न है। नितराम् रति का अर्थ है– पूर्ण रूपेण रति। निरति सुरति की चरमावस्था है। साधना की चरम स्थिति (अंतिम स्थिति) आने पर सुरति निरति में लीन हो जाती है। सोच्चार जाप निरुच्चार जाप में बदल जाता है। साकार निराकार बन जाता है।

हिंदी के मध्यकालीन साहित्य में इन दोनों शब्दों का प्रचुर प्रयोग हुआ है। इन शब्दों को लेकर विभिन्न विद्वानों ने अपने–अपने विचार व्यक्त किए हैं। डॉ. बड़थ्वाल ने शब्द 'सुरति' को 'स्मृति' से उत्पन्न माना है। डॉ. संपूर्णानंद 'सुरति' को 'स्रोत' का बिगड़ा रूप मानते हैं। पं. गोपीनाथ कविराज आध्यात्मिक दृश्य दर्शनरत असाधारण दृष्टि को 'सुरति' और निर्विकल्प ध्यान को 'निरति' कहते हैं। डॉ. हजारी प्रसाद द्विवेदी साधन–साध्य रूपा रति को 'सुरति' और विरति को 'निरति' कहते हैं। 'गोरख वाणी' में गोरखनाथ सुरति के भावनात्मक अर्थ–प्रसंग को लेकर 'सुरति' का साधक रूप में उल्लेख करते हैं–

अवधू सुरति सो साधक सबद सो विधि

आप सो माया, पर सो रिधि।।

आचार्य परशुराम चतुर्वेदी ने सुरति का अर्थ जीव का निर्मल रूप बताया है जिसमें मूल सत्य का रूप बराबर झलकता रहता है। कबीर ने इन दोनों शब्दों– सुरति–निरति का प्रचुर प्रयोग किया है। परचा कौ अंग' में वे कहते भी हैं–

सुरति समांनी निरति में, तिरति रही निरधार।

सुरति निरति परचा भया, तब खुले स्वयं दुवार।

सुरति समाननी निरति में, अजपा माहे जाप।

लेख समाना अलेख में यो आप म्है आप।।

कबीर के चिंतन पर निस्संदेह नाथ–संप्रदाय का प्रभाव था। अतः उन्होंने नाथों के अनुसार सुरति में अपूर्व शक्ति की उपस्थित मानी है। वे इसे एक रस कहते हैं जिसका पेय ब्रह्मानंद है। कबीर ने ब्रह्मानंद के लिए अमृत, महारस और सुधारस आदि शब्दों का प्रयोग किया है। वे तो अजपा–जाप को भी सुरति के अंतर्गत महत्व देते हैं। उनके विचारानुसार अजपा की दो स्थितियां है– एक सुरति और दूसरी निरति। सुरति सूक्ष्म तत्व है। यद्यपि यह शुद्ध रूप से योग का शब्द है। लेकिन इसमें प्रेम तत्व भी समाहित है। उसका उद्भव एव विलय दोनों की प्रेम से संबंधित हैं। सती के रूपक में कबीर ने सुरति शब्द का प्रयोग किया है। वे कहते हैं–

सती जरन कौ नीकसी पीउ का सुमिरि सनेह।

सबद सुनत जित नीकसा भूलि गई सुधि देह।।

कबीर ने 'सुरति' शब्द का प्रयोग 'ध्यान' के लिए किया है तथा वेद के लिए भी। वे रूप, आसक्ति आदि अर्थों में भी इस शब्द का प्रयोग करते हैं

उल्टे पवन मरै मरै नहीं जीवै, ताहि खोजी वैरागी।।

अंत में डॉ. सरना सिंह के शब्दों में– ''नाथों का चलाया हुआ 'सुरति' शब्द जिसकी व्युत्पत्ति के लिए श्रुति ही उपयुक्त शब्द प्रतीत हुआ है, कबीर की वाणी में आकर एक नवीन सांचे में ढल गया है। जिसमें नाथों के अर्थ श्रुति के साथ स्मृति (स्मरण) और स्वरति अर्थ भी सनिविष्ट हो गए। इस प्रकार कबीर का सुरति–शब्द–योग एक ऐसी साधना है जो नाथों की सुरति साधना से कहीं अधिक प्रौढ़, समर्थ, व्यापक है, क्योंकि इसमें मन के गढ़ नाद–पथ के अतिरिक्ति अन्य पंथों से भी एक ही साथ धावा किया है।''

**औंधा कुआं**– कबीरदास द्वारा प्रयुक्त पारिभाषिक शब्दावली का एक अन्य महत्वपूर्ण शब्द 'औंधा कुआं' है। संत काव्य में ब्रह्मरंध्र या दसम द्वार को औंधा कुआं कहा गया है। इसे अधोकूप, उरधकूप, उलटा कुआं, कमलकूप आदि शब्दों से भी जाना जाता है। डॉ. पीतांबर दत्त बड़थ्वाल ने त्रिकुटी में स्थित 'अमृत कूप' को औंधा कुआं कहा है। हठयोग साधना के अनुसार पिंड (शरीर) के शिरो भाग में, जिसे ब्रह्मांड कहा जाता है, एक सूक्ष्म छिद्र है। इसी को ब्रह्मरंध्र या कूप कहा जाता है। उसका मुख नीचे को होता है। इसीलिए इसे औंधा कुआ या उलटे मुखवाला अधःकूप भी कहते हैं। इसी में अमृत तत्व का निवास है। जब कोई सच्चा साधक सुषुम्ना नाड़ी के मार्ग से प्राण–शक्ति को ऊर्ध्वस्थ करता है तब उसे औंधे कूप से गिरने वाले अमृत रस की प्राप्ति होती है। कबीरदास ने भी इसी स्थिति का वर्णन किया है

आकासे मुखि औंधा कुआं, पाताले पनिहारि।।

ताका पाणि को हंसा पीवै, बिरला आदि विचारि।।

कबीरदास जी औंधे कूप की स्थिति आकाश में मानते हैं। जिस पानी की ओर वे संकेत कर रहे हैं वह सहस्त्रदल के मूल में स्थित शक्ति केंद्र से झरने वाला अमृत है। कबीर ने इसे ही औंधा कुआं का जल माना है। इसका पान कोई साधारण साधक नहीं कर सकता। केवल खेचरी मुद्रा धारक सिद्ध योगी ही पान कर सकता है। ऐसे मुक्त साधक को कवि ने 'हंसा' कहा है, क्योंकि वह औंधा कुआं का जल पीने में सफल होता है।

अनहदनाद— अनहदनाद को अनाहत नाद भी कहते हैं। अन्आहत शब्दों से बने इसका शाब्दिक अर्थ है— जो ध्वनि बिना किसी आघात या चोट के उत्पन्न होती है उसे अनहदनाद कहते हैं। ऐसा कहा जाता है कि मानव शरीर से अपने आप एक ऐसी ध्वनि उत्पन्न होती रहती है जिसे सुनने से और कुछ भी सुनने की आवश्यकता नहीं रहती। इसका एक यह अर्थ भी किया जाता है— निरंतर रूप से बिना स्फुटित होने वाला नाद। तंत्रालोक में कहा भी गया है—

एक नादात्मको वर्णः सर्व वर्ण विभागवान्।

सेखनरत्तमित रूपत्वादनाहत इहोदितः।।

अर्थात् संपूर्ण वर्णों में एक नाद वर्ण ही विभाजित हो रहा है। वह मूल नाद सदा उच्चारित रूप वाला है। वह कभी अस्त नहीं होता, अतः उसका नाम 'अनाहत नाद' कहा गया है। कुंडिलनी योग में इसी नाद का अनुभव होता है। 'अनहद' शब्द में एक व्यंजना और आ गई है कि यह नाद 'हद' से परे हैं। यह कब और कहां से आरंभ होता है और कब इसका अंत होता इसका किसी को पता नहीं। इसीलिए तो यह 'अनहद' नाम कहा गया है।

कबीरदास ने अपनी वाणी में इसे प्रयुक्त करके अनेक नाम दिए हैं। वे इसे 'गगन गर्जना', 'अनहद किंकुरी', 'अनहद बाजा' तथा 'अनहद झंकार' आदि शब्दों के रूप में प्रयोग करते हैं। लेकिन इस सबका लक्ष्य है— परब्रह्म की अनुभूति प्राप्त करना। कबीरदास कहते भी हैं—

कहै कबीर धुनि लहरि प्रगटी, लहजि मिलेगा सोई

अनहद संबद उठै झणकार, तहां प्रभु बैठे समरथ सार।।

अनहद नाद को कोई विरला साधक ही सुन सकता है। प्रायः मानव की सुषुम्ना नाड़ी का मार्ग बंद रहता है। इसका कारण यह है कि जीवन बहिमुर्खी होने के कारण संसार के अंतस्थल तथा निखिल ब्रह्मांड में ध्वनित होने वाले अखंड नाद को सुन नहीं पाता। पिंड में स्थित नाद भी केवल वही साधक सुन सकते हैं जिनकी कुंडलिनी जागृत होती है तथा जिनकी प्राणवायु सुषुम्ना में प्रवेश कर जाती है। कबीरदास ने अपनी एक साखी में कहा भी है—

पंषि उड़ानी गगन कू, उड़ी चढ़ी असमान

जिहिं सर मंडल भेदिया, सो सर लागा कान।।

गोरखनाथ ने अनहद नाद सुनाई पड़ने का वर्णन भिन्न प्रकार से किया है। कबीरदास भी उनका समर्थन करते हैं। अनहद नाद के सुनने की प्रक्रिया पूर्णतया योगपरक है और सामान्य व्यक्ति की समझ से परे है। फिर भी कबीर कहते हैं कि हे अवधू, नाद में बिंदु के स्थिर होते ही गगन में अनहद का शब्द उठता है।

अवधू नादै ब्यंद गगन गाजै, सबद अनाहद बोलै।

डॉ. परशुराम चतुर्वेदी के अनुसार— ''कबीर साहब वाले अनहद नाद की यह विशेषता है कि यह उनके भक्त

हृदय की तृप्ति के लिए 'जगत गुर' की 'कींगरी' का शब्द तथा हरि की कथा के भी रूप ग्रहण कर लेता है। इस प्रकार वह संभवतः शब्द ब्रह्म की अनुभूति में निपुण बनकर अंततोगत्वा उस 'परब्रह्म' की भी प्राप्ति कर लेता है जो वस्तुतः अनहद व बेहद भी है।''

## 4.17 सारांश

उपर्युक्त आलोचनाओं के अध्ययन से स्पष्ट है कि कबीर वैज्ञानिक दृष्टिकोण तथा तर्कबुद्धि को सच्ची शिक्षा मानते थे। उनके यथार्थवाद पर हजारी प्रसाद द्विवेदी लिखते हैं, ''कबीर ने कविता के लिए कविता नहीं लिखी, वह अपने आप हो गई।'' कबीर ने जनभाषा में जनता को शिक्षित किया। उनकी सधुक्कड़ी भाषा एक ओर मातृभाषा में विद्यार्थी को शिक्षित करने के लिए प्रेरित करती है, वहीं दूसरी ओर भाषाई पांडित्य, पराई भाषा में अपने लोगों से बात करना तथा भाषा के नाम पर विवाद पैदा करना आदि प्रवृत्तियों पर प्रश्नचिह्न लगाती है।

आज 21वीं सदी के विश्व में भारत जहां अपनी पहचान स्थापित करना चाहता है, वहां स्थानीय समस्याएं, नक्सलवाद, जातिवाद, क्षेत्रवाद, भाषावाद, संप्रदायवाद के दौर में एक समग्र भारतीय व्यक्तित्व' के रूप में कबीर हमारे व्योम में जाज्वल्यमान नक्षत्र हैं। डॉ. हजारी प्रसाद द्विवेदी ने कबीर के लिए लिखा है, ''वे मुसलमान नहीं थे। हिंदू होकर भी हिंदू नहीं थे। वैष्णव होकर भी वे वैष्णव नहीं थे। योगी होकर भी योगी नहीं थे। वे भगवान के नरसिंहावतार की मानव प्रतिमूर्ति थे। नरसिंह की भांति वे असंभव समझी जाने वाली परिस्थितियों के मिलन बिंदु पर अवतरित हुए थे, जहां एक ओर ज्ञान निकल जाता है और दूसरी ओर भक्ति मार्ग।'' अकबर के दरबारी ऊर्फी ने उनके बारे में कहा है, ''ऐसे रहो अच्छे और बुरों के साथ, ओ! ऊर्फी, कि जब तुम्हें मौत आए, मुसलमान तुम्हारे शव को पाक पानी से नहलाएं और हिंदू उसका अग्नि संस्कार करें।'' यह कबीर का ही युग बोध है कि वे बीच बाजार में हाथ में जलता हुआ मुराड़ा लिये खड़े हैं और सत्य की खोज में समाज के अग्रदूत बने हैं।